Ramavir Sanskrit Pathashala

52

गायत्रीस्तोत्रपञ्चकम्

आर्य्यभाष्यसहितम्

"संस्कृतभाष्येण हिन्दीसंक्षेपार्थेन च सहितम्"

कान्हपुर-(कानपुर) मण्डलान्तर्गत-पहलेपुरग्राम-
निवासिना श्रीमन्महर्षिकात्यायनवंशोद्भव-
श्री-१०८ मन्नालालमिश्रात्मज-आर्य्य-
सम्प्रदायप्रदर्शकगायत्रीभाष्यकार
केण श्रीजगन्नाथमिश्रेण
विरचितम्

आर्य्यसम्प्रदायप्रचारको भगवानार्य्यो मृत्युंजयो वदति—

"या चिन्ता भुवि पुत्रपौत्रभरणव्यापारसंरक्षणे
या चिन्ता धनधान्यभोगयशसां लाभे सदा जायते ।
सा चिन्ता यदि वेदमातृचरणाम्भोजे क्षणेऽहेतुकी
का चिन्ता यमराजभीमसदनद्वारप्रयाणे नृणाम् ॥ १ ॥"

प्रकाशक—
श्री पं० जगन्नाथ मिश्रात्मज श्री दुर्गानन्द मिश्र
ग्राम—पहलेपुर, जिला कानपुर ।

सं० १९८२.

गायत्रीस्तोत्रपञ्चकम्

आर्य्यभाष्यसहितम्

"संस्कृतभाष्येण हिन्दीसंक्षेपार्थेन च सहितम्"

कान्हपुर-(कानपुर) मण्डलान्तर्गत-पहलेपुरग्राम-
निवासिना श्रीमन्महर्षिकात्यायनवंशोद्भव-
श्री-१०८ मन्नालालमिश्रात्मज-आर्य्य-
सम्प्रदायप्रदर्शकगायत्रीभाष्यकार-
केण श्रीजगन्नाथमिश्रेण
विरचितम्

आर्य्यसम्प्रदायप्रचारको भगवानार्य्यो मृत्युंजयो वदति—

"या चिन्ता भुवि पुत्रपौत्रभरणव्यापारसंरक्षणे
या चिन्ता धनधान्यभोगयशसां लाभे सदा जायते ।
सा चिन्ता यदि वेदमातृचरणाम्भोजे क्षणेऽहेतुकी
का चिन्ता यमराजभीमसदनद्वारप्रयाणे नृणाम् ॥१॥"

प्रकाशक—
श्री पं० जगन्नाथ मिश्रात्मज श्री दुर्गानन्द मिश्र
ग्राम—पहलेपुर, जिला कानपुर ।

सं० १९८२.

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर, श्रीलक्ष्मीनारायण
प्रेस, बनारस।

॥ ॐ दुर्गेपाहिमाम् ॥

श्रीगायत्रीस्तोत्रपञ्चकम् ॥

यत्पादपद्मयुगलं सकलार्थदञ्च
ध्यायन्ति देवमनुजासुरसिद्धसङ्घाः ।
कृत्वा सुदुस्तरजपादिकयोगदानं
तन्देवमार्य्यममलं स्वगुरुं नमामि ॥१॥

गायत्रीम्प्रणमामि वेदवपुषामोङ्काररूपाम्परां
सावित्रीप्रतिपादितामघहराम्पद्मासने संस्थिताम् ।
नानानूपुरभूषिताङ्घ्रियुगलां लाक्षारसै रञ्जितां
योगाङ्गैःसमुपासितामणुतरां विप्रस्य मोक्षप्रदाम् ॥२॥

रत्नस्वर्णविभासिवस्त्रलसितां शोभान्वितामभूषितां
मञ्जीरादिकटिप्रदेशलसितां लावण्यशोभाऽवृताम् ॥
फुल्लां दिव्य उरस्थले सुदधतीम्मालां हृदुल्लासिनीं
मुक्ताविद्रुमहेमनीलमणिभिर्युक्ताम्प्रभावर्द्धिनीम् ॥३॥

मुक्ताभिः समलंकृतामतिविभां कण्ठस्रजं बिभ्रतीं
शुभ्रञ्चक्रगदाकपालमभयम्फुल्लाम्बुजं दक्षिणे ।
वामे शङ्खकशावरांकुशकजं सन्धारयन्तीं करे
सौवर्णाङ्गुलिकादिरत्नलसिते पञ्चाननाम्मातरम् ॥४॥

कर्णे कुण्डलमञ्जनञ्च नयने भ्रूभङ्गलीलायुतां
भाले बिन्दुमतीञ्च कुंकुमधरां नेत्रत्रयोद्भासिताम् ।

भानोर्दीप्तिकरां स्वदिव्यमुकुटे चन्द्रेण शोभान्वितां-
मादिप्तान्तकलेवरां सुललितामन्दस्मितामार्य्यकाम् ॥५॥
ध्येया ब्रह्मरमेशरुद्रगुरुभिर्भूपादिधीहेतुभिः
शश्वद्वैदिकसम्प्रदायकथने विद्वद्वराग्रे सदा ।
सा पायान्निजसेवकान् सुतजनान् शाक्तान् प्रियान्वै द्विजान्
भाले भस्मत्रिपुण्ड्रकान्तिलसितान् रुद्राक्षमालाधरान् ॥६॥
इतीदं ये तु गायत्र्याः स्तोत्रम्पञ्चकसंज्ञकम् ।
पठन्ति शुचयो नित्यं द्विजाः सन्ध्यामुपास्य च ॥७॥
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने भस्मस्नानपरायणाः ।
ते लभन्ते परं ज्ञानं वेदमातुः प्रसादतः ॥८॥
व्योमनागनवाब्जे च युवासंज्ञकवत्सरे ।
मार्गमासेऽसिते पक्षे त्रयोदश्यास्बुधे दिने ॥९॥
निर्मितं कान्यकुब्जेन जगन्नाथेन शर्म्मणा ।
प्रीतये जगदम्बाया लोकानाञ्च हिताय वै ॥१०॥

इति गायत्रीस्तोत्रपञ्चकं समाप्तम् ।

विशेष सूचना

विदित हो कि यह ग्रंथ वर्तमान समयानुसारी पुरुषों की भाँति टका कमाने की इच्छा से नहीं रचा गया, किन्तु ग्रंथ-कार का मुख्य उद्देश्य उस सनातन वैदिक आर्य्य सम्प्रदाय को उद्धार करने का है जो इस समय आधुनिक सम्प्रदायों द्वारा पद-दलित होने के कारण लुप्त-प्राय हो रहा है, यद्यपि उसके चिन्ह (भस्म रुद्राक्षादि धारण) सनातन वैदिक मता-वलम्वी आर्य्यों में पाये जाते हैं परन्तु उसके नामका आभास मात्र भी उन भारतवासी संस्कृतज्ञ विद्वानों के हृदय में नहीं पाया जाता है और न वे उसको खोज कर जानने की चेष्टा करते हैं। मनुष्य चाहे जिस समाज या सम्प्रदाय में हो उसकी आदि उत्पत्ति जान कर दूसरोंपर उसको प्रकट करना विद्वानों का परम धर्म्म है, अतएव ग्रंथकार ने इस छोटे से स्त्रोत्र द्वारा पूर्वोक्त सम्प्रदाय को मुक्त करा कर उसके पुनरुत्थान करने के निमित्त उद्योग कर संस्कृतज्ञ गुणग्राही सनातन आर्य्यधर्म्मावलम्बी धर्म्मात्मा पुरुषों द्वारा उसकी सफलता की आशा करता है कि जिससे उसने अपना सम्पूर्ण सत्व को परित्याग कर ग्रंथ प्रकाश-कीय सर्वाधिकार॰पूर्वोक्त महाशयों को दे दिया अर्थात् इस ग्रंथ की रजिस्टरी नहीं कराई। ग्रंथकार की इच्छा अपने सिद्धा-न्तानुसार यही थी कि इस ग्रंथ को भी आर्य्य सम्प्रदाय प्रदर्शक गायत्री भाष्य की भांति विना मूल्य वितरण करता, परन्तु उसके मित्रों ने कहा कि "सुलभं प्राप्य यो वस्तु न यात्यादरतां क्वचित्" अर्थात् जो वस्तु आसानी से प्राप्त होती है

उसका कहीं आदर नहीं होता, क्योंकि मूल्य न देने से माँगने वाले निष्प्रयोजन भी मांगने लगते हैं। बहुतेरे लोग विना मूल्य ग्रंथ की ओर ध्यान ही नहीं देते, बहुतेरे पढ़ कर रद्दी कागजों की भांति इधर उधर फेंक देते हैं कि जिससे विद्या तथा ग्रंथ-कार के परिश्रम का निरादर होता है। मित्रों की इस सम्मति को शिरोधार्य्य मान इस ग्रन्थ का सुलभ मूल्य रक्खा गया। यद्यपि इस ग्रन्थ का मूल्य है परन्तु सनातन धर्म्मसभाओं आर्य्य-समाजों तथा उनके उपदेशकों, व्याख्यानदाताओं, संस्कृत कालेज तथा पाठशालाओं के अध्यापकों तथा अन्य विद्या-प्रेमी संस्कृत विद्वानों, सुयोग्य पुरुषों को उनकी योग्यता जान कर यह ग्रन्थ उनकी सेवा में विना मूल्य उनके पत्र मात्र आने पर भेजा जायगा। सब धर्म्मानुरागी पुरुषों को अधिकार दिया जाता है कि यदि वे इस ग्रन्थ को सम्प्रदाय प्रचारार्थ, विक्रयार्थ, व्यवसायार्थ, अथवा धर्म्मार्थ वितरणार्थ जैसी उनकी इच्छा हो अपनी देश भाषा अथवा अक्षरों में मुद्रित कराकर प्रकाश कर सकेंगे, किन्तु ग्रन्थ के लेख में परिवर्तन करने को उनको या किसी को अधिकार न होगा। जो महाशय प्रकाश करना चाहेंगे उनको ग्रन्थ की शुद्धाशुद्ध छपाई देखने के निमित्त एक प्रति नूतन छपे हुये ग्रंथ की ग्रन्थकार को देना होगा।

ता० २० मार्च सन् १९२५ }
कानपुर।

हस्ताक्षर श्रीजगन्नाथ मिश्र,

भाष्यसमर्पणम् ।

योविश्वेश्वर आर्यसंज्ञकगुरू राजाधिराजोऽव्ययः
श्रीमद्भैरवढुंढिराजसहितः शक्त्यन्नपूर्णायुतः ॥
काशीवासरतः सुशिक्षणपरः सद्भक्तिभाजां सदा
स्वात्मज्ञानपरः प्रयाणसमये मुक्तिप्रदः शङ्करः ॥१॥

---

(१) आर्यसंज्ञकेति । शिव एव प्रथमाचार्यो बभूव इति स्पष्टीक्रियते ॥ आर्योऽहम् भगवानीश इति शिवगीतायां रामचन्द्रं प्रति शिववाक्यम् ॥ अध्या० ६।१६॥

(२) राजाधिराजेति । वाराणसीं स्मरहरप्रियराजधानीं त्यक्त्वा कुतो व्रजसि मूढ दिगन्तरेषु ॥ इति काशीखंडे पू० । अध्या० ३० । ८७ ॥

(३) श्रीमद्भैरवेति । भैरवादिसहितं निवासस्य प्रयोजनमाह । सर्वार्थानामत्र [काश्यां] दात्री भवानी [अन्नपूर्णा] सर्वान् कामान् पूरयेदत्र ढुंढिः ॥ सर्वान् जन्तून मोचयेदन्तकाले विश्वेशोऽत्र ज्ञानमंत्रोपदेशात् ॥ इति काशीखंडे पू० मेरे अध्याय ३।६६ ॥

(४) काशीवासरत इति । शंभुशक्तिरियं काशी काचित्सर्वैरगोचरा ॥ शंभुरेव हि जानीयादेतस्याः परमं सुखम् ॥ इति काशीखं० पू० अध्याय ४४।२८ ॥

(५) प्रयाणसमये मुक्तिप्रदः शङ्कर इति । काशीवासिजनो देवि मम गर्भे वसेत्सदा ॥ अतस्तं मोचयाम्यन्ते प्रतिज्ञेयं यतो मम ॥ इति काशीखं० पू० ३५। ४१ ॥ पार्वती प्रति शिव वाक्यम् ॥

तद्गुरोश्चरणाम्भोजे भाष्यमार्य्याभिधानकम् ।
समर्पयामि प्रीत्यर्थं गायत्र्या भेदभांजिनः ॥२॥

भाष्य समर्पण का हिन्दी अनुवाद

जो अविनाशी कल्याणकारक राजाधिराज आर्य्यसंज्ञक गुरु श्रीमद्विश्वेश्वर, कालभैरव, ढुंढिराज तथा अपनी शक्ति श्री अन्नपूर्णा सहित अपनी परम पवित्र राजधानी काशी में निवास करते हुए अपने सद्भक्तों को ज्ञानोपदेश करते हुए काशी-वासियों को उनके प्राण-वियोग के समय अर्थात् मरण-काल के समय तारक मंत्र का उपदेश कर निर्वाण (मोक्ष) को देता है, और गायत्री के साथ अभेद भाग लेने वाले अर्थात् निराकारावस्था में शिव और साकारावस्था में गायत्री कहला कर एक ही रूप होने वाले, अथवा गायत्री की अभेद भाव अर्थात् आत्म-स्वरूप से उपासना कर आत्म-स्वरूप होने वाले अपने आर्य्य नामधारी श्रीविश्वेश्वर गुरू के चरण-कमलों में इस गायत्री स्तोत्रपंचक के आर्य्यभाष्यम् नामक ग्रंथ को समर्पण करता हूँ।

श्रीजगन्नाथ मिश्र ।

(६) गायत्र्याऽभेदभागिनो भागिनो वा पाठः ॥

भूमिका

संसार के सम्पूर्ण जीवधारियों के शरीर उनके पूर्व जन्म के कर्म्मों के अनुसार प्रारब्ध-सञ्चित कर्म्मों के सुख-दुःख-रूपी फलों के भोगने के निमित्त निर्माण किये जाते हैं, कि जिससे यह जीवात्मा अपने शुभाशुभ कर्म्मों के अनुसार उस निर्मित शरीर में प्रवेश करने को सर्वनियन्ता परमेश्वर से वाध्य किया जाता है। और उस शरीर को पाकर अन्तर्यामी परमात्मा शिव की इच्छानुसार सुख-दुःख-दायक शुभाशुभ पाप-पुण्यसंज्ञक कर्मों को कर सुख-दुःख-रूपी फलों को भोगता है जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है। "ईश्वरः [शिवः] सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वजन्तूनां यन्त्रारूढ़ानि मायया"। अ० १८।६१ अर्थात् हे अर्जुन, ईश्वर–परमात्मा शिव सब जीवों को उनके कर्म्मानुसार अपनी शक्तिरूपी यन्त्र द्वारा नाना प्रकार की योनियों में घुमाते हुये सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय देश में वास करता है। पुनः पाण्डवगीता में दुर्योधन कहते हैं कि—"जानामि धर्म्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्म्मं न च मे निवृत्तिः॥ केनापि देवेन हृदिस्थितेनयथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥५७॥" अर्थात् दुर्योधन कहते हैं कि मैं धर्म्म को जानता हूँ परन्तु मेरी इच्छा धर्म करने की ओर नहीं होती और अधर्म्म को जानता हूँ परन्तु उसके करने से नहीं रुक सकता, कोई भी देव मेरे हृदय में बैठा है कि जिसकी प्रेरणानुसार मैं कार्य्य करता हूँ अर्थात् जैसी वह देव प्रेरणा करता है वैसा मैं कार्य्य करता हूँ। और इसी आशय को ग्रहण कर कायर पुरुष ईश्वर को सम्बोधन कर अब भी कहा करते हैं कि—"जानामि धर्म्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्म्मं न च मे निवृत्तिः। त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन

यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥" भगवन्, मैं धर्म को जानता हूँ परन्तु मेरी इच्छा धर्म करने की ओर नहीं होती अर्थात् मैं धर्म करना नहीं चाहता और मैं अधर्म पापजनक कर्मों को भी जानता हूँ परन्तु मेरा मन उन कुत्सित पापजनक कर्मों के करने से मुझे नहीं रोक सकता अर्थात् मैं उन दुःखदायक कर्मों के फल को जानता हुआ भी उनको करता हूँ क्योंकि इन सब कर्मों के कराने वाले आप मेरे हृदय में वास करते हैं, सो हे परमात्मन् जैसी आपकी प्रेरणा हमारे पूर्व जन्मों के कर्मानुसार होती है वैसे ही कर्म मैं करता हूँ। इसी प्रकार एक फारसी के प्रसिद्ध विद्वान् कवि महात्मा निज़ामी ने अपने ग्रंथ सिकन्दर नामा की भूमिका में ईश्वर प्रार्थना सम्बन्धी लेख में कहा है कि [सिपुर्दम् वतो मायये ख्वेशरा। तुदानी हिसावे कमोवेशरा ॥१॥ तुनेकी कुनी मन न, वद कर्दः अम् ॥ किवदरा हवालत वखुद कर्दः अम् ॥ २ ॥] हे भगवन् परमेश्वर मैंने अपने शुभाशुभ कर्मों की पूँजी अर्थात् थैली आपको अर्पण कर दी है, अब आप ही हमारे पुण्य-पाप-रूपी-कर्मों की थोड़ी और अधिक संख्या को विचारें। मैं उनकी संख्या को नहीं जानता हूँ किन्तु इतना ही जानता हूँ कि पापात्मक कर्मों को मैंने किया है और पुण्यात्मक कर्मों के कराने वाले आप हैं। इस लिखने का तात्पर्य्य यह है कि जब वह जगद्गुरू अन्तर्यामी परमात्मा शिव इस संसार में सांसारिक पुरुषों पर दया कर उनको कुमार्ग से सुमार्ग पर लाना चाहता है, तब वह दयालु गुरु अपनी शक्ति अर्थात् बुद्ध्याधिष्ठात्री देवता दुर्गा को इस कार्य्य सम्पादन के निमित्त

---

(१) बुद्धि की अधिष्ठात्री देवता दुर्गा ही है। जैसा कि ब्रह्मवैवर्त पुराण के

प्रेरणा करता है। और वह जगज्जननी दुर्गा अपने किसी भक्त के पवित्र हृदय स्थल में प्रवेश कर उस भक्त की बुद्धि को उस शुभ कार्य्य सम्पादन करने के निमित्त प्रेरणा करती है कि जिससे एक सामान्य मनुष्य भी बड़े बड़े विद्वानों की भाँति एक अपूर्व कार्य्य कर दिखाता है कि जिस कार्य्य को देख कर बड़े बड़े विद्वान् पंडित लोग चकित होते हैं। जैसा कि महात्मा श्रीतुलसीदासजी ने श्रीरामायण के मंगलाचरण में कहा है [सोरठा] जेहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर वदन ॥ करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन ॥१॥ मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन ॥ जासु कृपासु दयाल, द्रवौ सकल कमिमल दहन ॥२॥

गत साल सम्वत् १६८० के अगहन महीने में हम अपने ग्राम पहलेपुर से रेल द्वारा कानपुर शहर आ रहे थे और हमारे ग्राम से सिरसौल रेलवे स्टेशन का अन्तर ४ मील का है। उस दिवस अनुमान दो तीन बजे दिन को जब हम ग्राम से स्टेशन को पैदल आ रहे थे तब हमारे मुख से वार वार "गायत्रीं प्रणमाभि वेदवपुषामोङ्काररूपाम्पराम्" यह वाक्य निकलने लगा कि जो उस रास्ते में सैकड़ों वार निकला होगा, परन्तु इसके निकलने का कारण ज्ञात न हुआ। सायङ्काल जब हम शहर कानपुर अपने निवास स्थान पर पहुँचे तब भी इस विषय में कुछ चिन्ता बनी ही रही परन्तु रात्रि के समय भोजन करने के पश्चात् सो गये। हमारी वृद्धावस्था होने के कारण सदैव से यह नियम है कि प्रातःकाल चार पाँच बजे

कृष्ण खंड में लिखा है। बुद्ध्याधिष्ठात्री या देवी सर्वशक्तिस्वरूपिणी। सर्वज्ञानात्मिका सर्वा सा दुर्गा दुर्गनाशिनी ॥ अध्याय ४०।६५ ॥

शीत काल होने से नींद खुलने पर खांसी का आना प्रारम्भ होता है और आधे घण्टे तक उसकी अवस्था जारी रहती है। उसी नियमानुसार उस रात्रि को भी ज्योंही खांसी आना प्रारम्भ हुई त्योंही हमने उस पूर्वोक्त वाक्य अर्थात् "गायत्रीं प्रणमामि" इत्यादि पर विचार करना प्रारम्भ किया तो पहिले दिन गायत्रीं प्रणमामि वाला श्लोक बना, दूसरे दिन इस स्तोत्र का प्रथम श्लोक "यत्पादपद्मयुगलं०" बना इसी प्रकार क्रमशः जब पूरे ध्यान तक ६ श्लोक हो चुके तब उन श्लोकों का "गायत्री स्तोत्रपञ्चक" नाम रख कर उसके पश्चात् ४ श्लोकों में फल स्तुति और स्तोत्र-निर्माण समय लिख कर इस स्तोत्र को समाप्त किया। हम संस्कृत विद्या के पण्डित नहीं हैं इससे छन्द रचना में अपना विशेष परिज्ञान न होने के कारण किसी सुयोग्य संस्कृतज्ञ विद्वान से इस स्तोत्र का संशोधन कराना उचित जान हम अपने परम कृपाकारक श्री पं० हरिनन्दन मिश्र [मैथिल] ज्योतिषाचार्यजी से मिले और यह स्तोत्र उनको दिखाया परन्तु उनके पाठशाला में वार्षिक छुट्टी हो जाने के कारण वे अपने देश मिथिला को चले गये, इससे इसका संशोधन न हो सका। उनकी अनुपस्थिति में हमने एक दिवस मार्ग में जाते हुए श्री पण्डित विद्वद्वर वैद्यनाथ मिश्र [मैथिल] को देखा, परन्तु पूर्व परिचय न होने के कारण उनसे सम्भाषण न कर सके किन्तु यह अवश्य भान हुआ कि यह पुरुष भी मैथिल ब्राह्मण अवश्य होंगे। कई दिवस के पश्चात् हम श्री पं० हरिनन्दन जी के शुभागमन के समाचार लेने को उनके पाठशाला स्थान पर गये। वहां उनके विद्यार्थियों द्वारा श्री० पं० वैद्यनाथ मिश्रजी की योग्यता को सुन चित्त आल्हादित हो गया और यह

विश्वास हो गया कि इन महाशय से स्तोत्र का संशोधन ठीक होगा क्योंकि अपने सम्प्रदाय वाला पुरुष ही अपने भाव को समझ कर उचित सम्मति देने के योग्य होता है, अतएव अपने इसी सिद्धान्तानुसार हम उसी दिन श्री० पं० वैद्यनाथ मिश्र जी के निवास स्थान पर जा मिले । यद्यपि हमारा उनका पूर्व परिचय न था, तथापि वे हमारे नाम को जानते थे क्योंकि हमारा निर्माण किया हुआ "आर्य सम्प्रदाय प्रदर्शक गायत्रीभाष्यम्" नामका ग्रन्थ उनके पास था जिसको उन्होंने पढ़ा था, अतएव उन्होंने हमारे नामको सुनते ही अपनी प्रथम ही साक्षातता में अपना पूर्व परिचित मनुष्य सदृश विचार कर अपनी गुणग्राहकता, साम्प्रदायिक योग्यता के भावों का परिचय देकर और अपना कृपापात्र जान सादरता से अपना स्नेह करना प्रारम्भ किया और अन्त में प्रसन्नतापूर्वक इस स्तोत्र को संशोधन कर उसके प्रकाश करने की आज्ञा दी, कि जिसको मैंने मुद्रित करा कर प्रकाशित किया । स्तोत्र प्रकाश होने के पश्चात् श्री पं० वैद्यनाथ मिश्र जी ने कहा कि इस स्तोत्र में बहुत क्लिष्ट भाव भरे हैं कि जिससे इसका आशय साधारण लोगों के समझ में आना अति कठिन है इससे आप इस पर भाष्य कीजिये कि जिससे लोगों को लाभ हो, अतएव उनकी इस आज्ञा को शिरोधार्य मान भाष्य रचना की गई ।

प्राचीन काल में अन्य देश निवासियों के समान भारतवासी मनुष्यों में जैसी विद्या, बुद्धि, कला-कौशलादि गुण थे वैसे ही उनमें स्वधर्म-प्रेम, स्वधर्म-रक्षा, परोपकारता दूसरों के उपकार के प्रति प्रत्युपकारता, अर्थात् दूसरे मनुष्यों के अत्यन्त लघु उपकार को भी स्वीकार करते हुए

अपने मुक्त-कण्ठ से उस उपकार की कृतज्ञतारूपी यश को दूसरे मनुष्यों पर प्रख्यात करना इत्यादि और भी विशेष गुण थे, और अब भी वे गुण धर्म्मानुरागी सज्जन पुरुषों में पाये जाते हैं। इस प्राचीन मर्य्यादा पालन के निमित्त हम भी अपने परमोपकारक तथा सहायक विहार प्रान्त मिथिला-देशान्तर्गत दरभंगा जिला निवासी श्रीमान् विद्वद्वर विद्यासिन्धु उपाधिधारी श्री पं० वैद्यनाथ मिश्र, तथा ज्योतिषाचार्य्य श्रीमान् हरिनन्दन मिश्र जी को मुक्त-कण्ठ से कोटिशः धन्य-वाद देते हैं, क्योंकि यदि इनकी कृपा न होती तो हमको इस भूमिका के लिखने का सुअवसर न प्राप्त होता। इस भाष्य के जन्मदाता श्री पं० वैद्यनाथ मिश्र जी हैं क्योंकि यदि उनकी प्रेरणा न होती तो भाष्य का होना कठिन था अतएव वे विशेष धन्यवाद देने के योग्य हैं।

उपनिषदों को देखने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आर्य लोगों को शिक्षा ऐसे शब्दों में दी जाती थी कि जिस शिक्षा से लौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक विषयों के कार्य्यों के साधन का भी उपदेश उन शब्दों से हो सकता था, जैसा कि तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षा अध्याय के उपदेशों से जाना जाता है। यहाँ पर यह शिक्षा दी जाती है कि "धर्मञ्चर। धर्म्मान्न प्रमादितव्यम्। देवपितृकार्य्या-भ्यां न प्रमादितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्य-देवो भव।" इत्यादि वाक्य उपदेश किये गये हैं। इन वाक्यों को विचारने से दो भाव प्रगट होते हैं, परोक्षवादी और अपरो-क्षवादी। परोक्षवादी लौकिक उपासनादि व्यवहारिक भावों को बताता है और अपरोक्षवादी पारलौकिक, ब्रह्म सम्बन्धी उपासनादि की विधि को प्रतिपादन करते हुए आध्यात्मिक विषय-

की ओर आकर्षित करता है। इन वाक्यों में से हम केवल "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव और आचार्य्यदेवो भव"। इन्हीं वाक्यों की व्याख्या करते हुये विचार करते हैं। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव। ये दोनों वाक्य सामान्य रूप से मनुष्य मात्र को यह उपदेश करते हैं कि पुत्र को उचित है कि सम्पूर्ण देवताओं को त्याग कर केवल अपनी माता पिता की निष्कपट भाव से उपासना करे, अर्थात् जिस माता पिता के संयोग से उसका जन्म हुआ हो उनको सदैव अपने मन, वचन तथा कर्मों के द्वारा भोजनाच्छादनादि सद्व्यवहारों से सन्तोषित किया करे, यह लौकिक परोक्ष उपदेश हुआ। "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव" इन तीनों वाक्यों द्वारा केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आर्य जाति को यह उपदेश किया जाता है कि जिस माता पिता के संयोग से प्रथम जन्म हुआ है, और जिस माता पिता के संयोग से दूसरा जन्म जो उपनयन काल में सावित्री माता और आचार्य पिता के द्वारा होता है कि जिससे उनकी द्विज संज्ञा होती है; तथा वह जो विद्या अर्थात् वेद को पढ़ाता हो और गुरू रूप से गायत्र्यादि वैदिक मन्त्रों की दीक्षा करता है, उनकी उपासना ब्रह्म भाव से करना, और उपास्य देवता और गुरु में अभेद भाव रख कर गुरु को सब प्रकार से सन्तोषित करना। जैसे "अहरहः सन्ध्यामुपसीत" अर्थात् नित्य प्रति सन्ध्याख्य गायत्री माता की उपासना करे यह श्रुति वाक्य है, इसी प्रकार नित्य प्रति शिवस्वरूप आचार्य जो सृष्टि की आदि से आचार्य तथा जगद्गुरू हैं तिनका पूजन करना, यह पारलौकिक अपरोक्ष उपदेश हुआ कि जो अध्यात्म विषय की ओर खींचता है। अतएव इसी भाव को ग्रहण कर इस स्तोत्र की भाष्य रची

गई और उसका नाम (१)"आर्यंभाष्यम्" रक्खा गया। जिसकी व्युत्पत्ती पाठकों को भाष्य और उसकी टिप्पणियों के पढ़ने से ज्ञात होगी।

शास्त्रों में अनेक प्रकार के स्तोत्र तथा मंत्र देखने में आते हैं कि जिससे उनके विषय में हमारे चित्त में नाना प्रकार की कल्पनायें होने लगीं और अन्त में श्रीगुरु महाराज की कृपा से यह विचार निश्चय हुआ कि शास्त्रानुसार कितने प्रकार के स्तोत्र होते हैं और उनमें से इस स्तोत्र की क्या संज्ञा हो सकती है, इस बात का अनुसन्धान करना अत्यावश्यक है। जहाँ तक विचार में आया उससे जाना जाता है कि स्तोत्र बहुत प्रकार के होते हैं कि जिनका विवरण नीचे किया जाता है।

स्तोत्र के दो भेद होते हैं। गद्य और पद्य अर्थात् वार्तिक और श्लोक बद्ध। इनमें से प्रत्येक तीन प्रकार के होते हैं, वैदिक, तान्त्रिक और पौराणिक। इनमें भी प्रत्येक के चार भेद होते हैं, द्रव्यवाचक, विधिवाचक कर्म्मवाचक और ब्रह्मवाचक। द्रव्यवाचक किसी द्रव्य के विषय को कथन करता है, विधिवाचक किसी कर्म्म के करने की विधि को कथन करता है, कर्म्मवाचक किसी कर्म्म के करने की श्रेष्ठता और महात्म्य को कहता है, और ब्रह्मवाचक ब्रह्मस्वरूप परमात्मा के गुणानुवादों तथा कर्म्मों की कथन करता है। अब यहाँ पर अन्य विषयक

(१) आर्य्यभाष्यम् नाम इसलिये रक्खा गया कि इसमें आर्य्य शब्द का निरूपण अच्छे प्रकार से किया गया है अर्थात् शिव को आर्य्य प्रतिपादन किया गया है, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यही तीन वर्ण आर्य्य सिद्धि किये गये और गायत्री मंत्र तथा आर्य्य संज्ञक शिव से आर्य्य जाति की उत्पत्ती बताई गई है।

स्तोत्रों को छोड़ कर केवल ब्रह्म सम्बन्धी स्तोत्र ही पर विचार किया जाता है। ब्रह्मवाचक स्तोत्र के दो भेद होते हैं, ज्ञानवाचक और भक्तिवाचक। ज्ञानवाचक वेदान्त शास्त्र के अनुसार ब्रह्म को निरूपण करता है और इसके दो भेद होते हैं, एक साधारण वेदान्त कथन और दूसरा अद्वैत भावना निरूपण, जिसका आधार महावाक्यों पर होता है अर्थात् महावाक्यों के मतानुसार अद्वैत भावना के बोध का उपदेश किया जाता है। भक्तिवाचक स्तोत्र कर्म्म, उपासना, और उपासकों की कामनाओं की याचना को कथन करते हुए उपासक के मन को उपास्य देवता की ओर आकर्षित करते हैं, और उनके चार भेद होते हैं, बृहत्, लघु, अतिलघु और सूक्ष्म। यह चारो भेद वैदिक, तान्त्रिक, और पौराणिक सब स्तोत्रों में पाये जाते हैं। जिनका विवरण इस रीति से होता है। जैसे वैदिक-स्तोत्र में, बृहत् पुरुषसूक्तादि जिसमें परमात्मा के विराट् रूप का वर्णन सगुण रूप से होता है, लघु गायत्री मन्त्रादिक वैदिक मंत्र, अतिलघु ॐ नमः शिवाय कि जिसमें देवता के नाम से ध्येय स्वरूप और मंत्र का वर्णन होता है, और सूक्ष्म ओङ्कार मंत्र मात्र जिससे परमात्मा के स्थूल और सूक्ष्म रूप का विचार उपासना में किया जाता है। तान्त्रिक स्तोत्र में बृहत् देवती का सहस्रनाम, लघुशतनाम अथवा साधारण स्तोत्र, अतिलघु बीजयुक्त मंत्र जिसमें देवता के ध्येय स्वरूप का चिन्तवन और मंत्र को वर्णन करता है। सूक्ष्म केवल बीजमंत्र जिसमें देवता के ध्येय स्वरूप का विचार होता है। इसी प्रकार पौराणिक स्तोत्र भी होते हैं। पूर्वोक्तस्तोत्र विवरण से यह सिद्ध होता है कि यह "गायत्री स्तोत्र पञ्चक" संज्ञक स्तोत्र अतिलघु स्तोत्र में से है कि जिससे इसको अति

लघु स्तोत्र कहना योग्य है, क्योंकि इस स्तोत्र में "गायत्रं प्रणमामि वेदवपुषामोङ्काररूपाम्पराम्" इस वाक्य से "गायत्र्यै नमः" यह मंत्र "वेदवपुषाम्" से लेकर चार श्लोक तक देवता के ध्येय स्वरूप का वर्णन और "सापायान्निजसेवकान्" से स्तोत्रकारक की प्रार्थना सिद्ध है, इससे अति लघु संज्ञक स्तोत्र सिद्ध हुआ।

इस स्तोत्र के द्वारा प्राचीन सनातन वैदिक आर्य्य सम्प्रदाय का आभास दिखलाया गया है, और उसकी भाष्य में प्राचीन साम्प्रदायिक विषयों पर अच्छे प्रकार से विवेचना करते हुए उनको प्रमाणों सहित प्रतिपादन किया गया है। जिस विषय का समावेश श्लोकों से सम्बन्ध रखता हुआ भाष्य में पाया गया परन्तु पूर्ण रूप से भाष्य में उसका प्रतिपादन न हो सकने से भाष्य के नीचे विषय-सूचक शब्दांक देकर टिप्पणी द्वारा प्रमाणों सहित उसका निरूपण किया गया है कि जिससे पाठकों को भाष्य की आलोचना में सुगमता प्राप्त हो।

प्रथम श्लोक में शिवसंज्ञक परमात्मा के निराकार और साकार को वर्णन करते हुए श्रीगायत्रीजी को शिव का साकार स्वरूप मान गुरु भाव से उनकी स्तुति दूसरे श्लोक से छठवें श्लोक तक की गई। दूसरे श्लोक में गायत्री को वेदस्वरूपा, ओंकारस्वरूपा, ब्रह्मस्वरूपा और आत्मस्वरूपा तथा बीज-स्वरूपा प्रतिपादन करते हुए पाँचवे श्लोक तक उनके ध्यान का वर्णन किया गया। छठवें श्लोक में सनातन वैदिक सम्प्रदाय की उत्पत्ति और सृष्टि के आदि में वैदिक सम्प्रदाय का प्रचार करने वाला कौन हुआ और उस सम्प्रदाय की क्या संज्ञा हुई इन बातों का वर्णन किया गया। सातवें और आठवें श्लोकों द्वारा स्तोत्र की फल-स्तुति को कहते हुये साम्प्रदायिक विषयों

पर विचार कर उनको प्रमाणों सहित निरूपण किया गया है। नवम तथा दशम श्लोकों द्वारा स्तोत्र के निर्माण काल इत्यादि का वर्णन किया गया है।

अब सनातनधर्म्मावलम्बी धर्म्मानुरागी, गुणग्राही, संस्कृतज्ञ तथा अन्यमतावलम्बी विद्वज्जनों से हमारी सविनय हाथ जोड़ कर यही प्रार्थना है कि वे लोग, अपने आधुनिक साम्प्रदायिक राग-द्वेष-रूपी रंगीन ऐनकों अर्थात् चश्मों को अपने नेत्रों से पृथक् रख कर न्याय पथावलम्बी हो शुद्ध अन्तःकरण से इस स्तोत्र के भाष्य का अवलोकन कर हमारे परिश्रम को सफल करते हुए, अपने को सनातन वैदिक आर्य्य मतावलंबी आर्य्य होने के सिद्धान्तों को प्रगट करते हुये सनातन आर्य्य सम्प्रदाय के अनुगामी हो आर्य्य सम्प्रदाय का प्रचार करने का उद्योग करें कि जिससे फिर इस भारतवासियों के प्राचीन सम्प्रदाय का विकाश उनके हृदयों में हो। यदि उनकी दृष्टि में इस भाष्य में कोई त्रुटि अथवा अशुद्धता ज्ञात हो तो उसको वे शुद्ध कर लेवें अथवा भाष्यकार को उससे सूचित करें परन्तु जो लेख दुराग्रह द्वेषपूर्ण होंगे उन पर ध्यान न दिया जायगा।

तारीख २५ जनवरी सन् १६२५ }
कानपूर।

जगन्नाथ मिश्र

विना मूल्य पुस्तक मिलने का पता—
श्रीजगन्नाथ मिश्र भाष्यकार
स्वर्गवासी पं० वनारसी लाल वाजपेयी ज्योतिषी का मका
चौक वजाजा वाजार,
कानपुर।

मूल्य से पुस्तक मिलने का पता—
श्री० पं० हरिप्रसाद भागीरथ संस्कृत पुस्तकालय,
चौक बाजार,
कानपुर।

गायत्री स्तोत्रपञ्चकम्

आर्य्यभाष्य सहितम्

ॐ दुर्गे पाहि माम् ॥

यत्पादपद्मयुगलं सकलार्थदञ्च
ध्यायन्ति देवमनुजाऽसुरसिद्धसंघाः ॥
कृत्वा सुदुस्तरजपादिकयोगदानं
तन्देवमार्य्यममलं स्वगुरुं नमामि ॥ १ ॥

अन्वयः ।

यस्य गुरोः पादपद्मयुगलं सकलार्थदञ्च देवमनुजाऽसुरसिद्धसङ्घाः सुदुस्तरजपादिकयोगदानं कृत्वा ध्यायन्ति, तन्देवमार्य्यममलं स्वगुरुं नमामि ॥ १ ॥

भाष्यम् ॥

पुरा सृष्ट्यादौ सच्चिदानन्दपरमात्मा शिव एव देवैः, राक्षसैर्गन्धर्वैः किन्नरैर्मनुष्यैश्च सर्वैर्गुरुरूपेणोपासितः पूज्यो बभूव, तेन तच्छिवं गुरुमवलम्ब्य इदं स्तोत्रं तद्भाष्यञ्चारभते ॥

अथ मंगलाचरणम् ॥

अश्वारूढां महाविद्यां गार्गीं(१) स्वकुलदेवताम् ॥
नौमिविघ्नविनाशाय दुर्गां दुःखहराम्पराम् ॥ १ ॥

---

(१) गार्गीं स्वकुलदेवतां नौमीति । तत्र मंगलाचरणे स्वकुलदेवतायाः स्मरणस्य प्रयोजनमाह ॥ यस्य गोत्रस्य या शक्तो रक्षणे पालने क्षमा ॥ सा तस्य कुलदेवीति साक्षात्तत्र बभूव ह ॥ इति स्कन्दपुराणे सेतुमाहात्म्ये ब्रम्हखण्डे ॥ अध्या० १०।१०७॥ कथम्भूतां गार्गीम् (अश्वारूढाम् महाविद्याम्) ? अष्टादशमहाविद्यासु एकाश्वारूढासंज्ञेति बोद्धव्या। तस्या ध्यानमाह ॥ रक्तामश्वाधिरूढां शशधरशकलाबद्धमौलिं त्रिनेत्रां पाशेनाबद्धसाध्यां स्मरशरविवशां दक्षिणेनानयन्तीम् ॥ हस्तेनान्येन वेत्रां वरकनकमयीं धारयन्तीं मनोज्ञां गार्गीं ध्यायेदजस्रां कुचभरनमितां दिव्यहाराभिरामाम् ॥ इति गार्गीपूजापद्धतौ ॥ यद्वा, अश्वारूढामिति। अश्वः सूर्य्यस्तस्योपरि आरूढां स्थितां तेन गायत्रिस्वरूपाम् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ असौ वादित्य एषोऽश्वः ॥ इति शतपथ ब्रा० का० ६ अ० ३ प्र० १ मं० २१ ॥ कथम्भूतामश्वारूढां गायत्रीस्वरूपां गार्गीम् ? (दुर्गाम्) पराशक्तिम् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ यस्या परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तितेति देव्याथर्वशीर्षे ॥ अत्र गायत्र्येव दुर्गा बभूवेति स्पष्टीक्रियते । तत्र ब्रह्मजगत्स्रष्टा विष्णुपादोद्भवे जले। नियमेन च संयुक्तो जपन्नास्तजले शुभे ॥ चेत्रश्रमायां गायत्रीं ततो देवा विचक्रुः ॥ ब्राह्मि प्रजापतेः सर्वान्देवानृषिवरानपि ॥ असुरान्क्षयमापन्नान्त्राहित्राहीत्यचोदयत् ।।इति वाराह पुराणे अध्या० २८।२० + २१ पुनस्तत्रैव ॥ या सा माया शरीरात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ गायत्र्यष्टभुजा भूत्वा वृत्रासुरमयोधयत् ॥ सैव नन्दा भवेद्देवी देवकार्य्यचिकीर्षया ॥ महिषाख्यं सुरक्षं कुर्वती ब्रह्मणे रता ॥ अध्या० ६८। ९९ + १०० ॥ अत्र दुर्गाशब्दस्याक्षरार्थमाह ॥ दैत्यनाशार्थवचनोदकारः परिकीर्तितः ॥ उकारो विघ्ननाशस्य वाचको वेदसम्मतः ॥ रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः ॥ भयशत्रुघ्नवचनश्चाकारः परिकीर्तितः ॥१॥ दुर्गंति दैत्यवचनोऽप्याकारो नाशवाचकः। दुर्गंनाशयति यानित्यं सा दुर्गा वा प्रकीर्तिता ॥२॥ इति शब्दकल्पद्रुमे ब्रह्मवैवर्तपुराणवचनम्। पुनर्देवीभागवते तृतीये स्कन्धे ॥ दुर्गात्त्रायति भक्तं या सदा दुर्गार्तिनाशिनी ॥ दुर्ज्ञेया

नानाशास्त्राणिचालम्ब्य पूर्वाचार्य्यमतानि च ॥
सारं तेभ्यः समाकृष्य विचार्य्य च पुनः पुनः ॥ २ ॥
विदुषां मोदनार्थाय बालानाञ्च हिताय वै ॥
भाष्यं करोमि गायत्र्याः स्तोत्रस्यार्य्याभिधानकम् ॥ ३ ॥

अथ मङ्गलं त्रिविधम्। आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशश्चा-ऽपि मङ्गलम् ॥ इति वचनात्। अत्र गुरुनमस्कारात्मकं मङ्गलं तत्र कतिविधा गुरवो भवन्तीत्याह—गुरवः सन्ति बहवः पूज्या वन्द्याश्च सादरम् ॥ तानहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनः सखे ॥ अध्यापकश्च वेदानां वेदार्थश्चैव बोधकः ॥ शास्त्रवक्ता

सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम् ॥ अध्या० २६।६१ ॥ अथ दुर्गा नाममाहात्म्यमाह तवर्गस्य तृतीयोऽर्णः पञ्चमस्वरसंयुतः ॥ कवर्गस्य तृतीयोऽर्णः वन्हिस्तस्योपरि स्थितः ॥ द्वितीयस्वरसंयुक्तं नामेदं परिकीर्तितम् ॥ आरोग्यस्य च सम्पत्तेर्ज्ञानस्य च महोदये ॥ नामेदं परमो हेतुर्मुक्तये भवसंज्ञिनाम् ॥ कलिकाले विशेषेण महापातकिनामपि ॥ निस्तार-बीजं विज्ञेयं नामसंस्मरणं प्रिये ॥ इति रुद्रयामले ॥ पुनर्मुण्डमालातन्त्रे ॥ दुर्गा दुर्गेति दुर्गेति दुर्गा नाम परं मनुम् ॥ योजपेत् सततं चण्डि जीवन्मुक्तः स मानवः ॥ महोत्पाते महारोगे महाविपदि संकटे ॥ महादुःखे महाशोके महाभयसमुत्थिते ॥ यः स्मरेत्सततं दुर्गां जपेत् यः परमं मनुम् ॥ स जीवलोके देवेशि नीलकण्ठत्वमाप्नुयात् ॥ पुनर्देवी भागवते नवमस्कन्धे नारदम्प्रति नारायणवाक्यम् ॥ सर्वबुद्ध्यादिदेवी यामंतर्यामी-स्वरूपिणी ॥ दुर्गसंकुटहंत्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि ॥ वैष्णवानाञ्च शैवानामुपास्येयं च नित्यशः ॥ मूलप्रकृति (गायत्री) रूपा च सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ अध्या० ५०।५३ + ५६ ॥ पुनस्तत्रैव॥ तदेव जन्मसाफल्यं दुर्गास्मरणमस्ति चेत्॥ अ० ५०।६० ॥ पुनस्तत्रैव तृतीये स्कन्धे व्यासवाक्यम् ॥ नाराधिता येन शिवा सनातनी दुःखार्तिहा सिद्धिकरी जगद्धरा ॥ दुःखावृतः शत्रुयुतश्च भूतले नूनं दरिद्रो भवतीह मानवः ॥ यां विष्णुरिन्द्रहर पद्मजौ तथावन्हिः कुबेरो वरुणो दिवाकरः ॥ ध्यायन्ति सर्वार्थ समाप्तिर्नन्-दितास्तां किंमनुष्या न भजन्ति चण्डिकाम् ॥ अध्या० २७।२३ + २४ ।

धर्म्मवक्ता नीतिशास्त्रोपदेशकः ॥ मन्त्रोपदेशव्याख्याकृद्वेद संदेहहृत्तथा॥ व्रतोपदेशकश्चैव भयत्राताऽन्नदोहि च ॥ श्वशुरो मातुलश्चैव ज्येष्ठभ्राता पिता तथा ॥ उपनेता निषेक्ता च संस्कर्ता मित्रसत्तमः ॥ इति नारदीयपुराणे कल्माषपादं प्रति ब्रह्मराक्षसवाक्यम् ॥ अध्या० ६।८५+६१ ॥ तत्रेषां गुरूणां मध्ये वैदिकमन्त्रोपदेशकृद्वेदार्थव्याख्याकृच्च, वेदसन्देहहृदात्मज्ञानोपदेशेन मोक्षप्रदश्च गुरुशब्देन गृह्यते ॥ तत्र गुरुशब्दस्याक्षरार्थमाह ॥ गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः॥ उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः॥ इति तन्त्रसारे आगमसारवचनम्॥ पुनः॥ गकाराज्ज्ञानसम्पत्ती रेफस्तत्वप्रकाशकः ॥ उकाराच्छिवतादात्म्यं दद्यादिति गुरुः स्मृतः ॥ इति श्रीकूर्मे ॥ अथ शिव एवादिगुरुर्वभूवेति स्पष्टीक्रियते ॥ स एषपूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ इति पातञ्जलसूत्रे ॥पा०१सू०२६ तत्र भाष्यम्॥ पूर्वे हि गुरवः कालेनावच्छेद्यन्ते। यत्रावच्छेदार्थेन कालो नोपावर्तते स एष पूर्वेषामपि गुरुरिति व्यासभाष्ये॥ पुनर्लिंगपुराणे सनत्कुमारं प्रति शिलादिवाक्यम्। शिवेनातिशयत्वेन शिवं प्राहुर्मनीषिणः॥ प्रतिसर्गप्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम् ॥ उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्त्तिनाम् ॥ कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणामप्यसौ गुरुः॥ सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः ॥ अध्या० ६।४५।४७ ॥ पुनः स्कन्दपुराणे सूतसंहितान्तर्गतब्रह्मगीतायाम् ॥ मंत्रतंत्राधिदस्तद्वल्लौकिकोपायदस्तथा ॥ गुरुर्न कथितः प्राज्ञैः क्लेशहेतुप्रदो हि सः ॥ सत्यवत्सकलं भान्तं निश्चित्यासत्यरूपतः ॥ सर्वसाक्षितयात्मानं विभज्य परचेतनम्॥ यस्त्वं तदिति वेदान्तप्रदीपेन स्वकं निजम्॥ शिवत्वं बोधयत्येव गुरुसाक्षान्न चापरः॥ दृश्यरूपमिदं सर्वं दृग्रूपेण विलाप्य च॥ दृग्रूपं ब्रह्म यो वक्ति स गुरुर्नापरः पुमान्॥ परमा-

द्वैतविज्ञानं कृपयैव ददाति यः ॥ सोऽयं गुरुर्गुरुः साक्षाच्छिव(१) एव न संशयः ॥ अध्या० १२।५०+४४ ॥ पुनः कूर्म्मपुराणे ऋषीं प्रति शिववाक्यम् ॥ अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः ॥ धार्म्मिकाणाञ्च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम् ॥ अध्या० ५।१६ ॥ पुनः स्कन्दपुराणे काशीखण्डे ॥ श्रीमद्विश्वेश्वरो देवो विश्वेषां जगतां गुरुः ॥ अध्या० २५।३० ॥ पुनर्ब्रह्मवैवर्तपुराणे कृष्णखण्डे ॥ सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं योगींद्राणां गुरोर्गुरुम् ॥ मृत्युञ्जयं कालकालं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ अध्या० ३८।३० ॥ पुनः शिवपुराणान्तर्गतवायवीयसंहितायां श्रीकृष्णं प्रत्युपमन्युवाक्यम् ॥ यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः ॥ गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण(२) [शक्तिस्वरूपेण] संस्थितः ॥

---

(१) शिव एव न संशय इति। कस्माच्छिव उच्यते इत्याह। समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु। शिवमिच्छन् मनुष्याणां तस्मादेव शिवः स्मृतः॥ इति महाभारते द्रोणपर्वणि॥ अध्या० २०३।१२६॥ पुनः कूर्म्मपुराणे॥ शिवः स्यान्निर्मलो यस्माद्विभुः सर्वगतो यतः॥ अध्या० ४॥ पुनः शिवपुराणे ज्ञानसंहितायाम्॥ यतः सर्वसमुत्पन्नं निर्गुणात्परमात्मनः॥ तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदान्तिनो विदुः॥ अध्या० ७७।३॥ पुनर्ब्रह्मवैवर्तपुराणे ब्रह्मखण्डे॥ शिवं कल्याण वचनं कल्याणं मुक्तिवाचकम्॥ यतस्तत्प्रभवस्तेन स शिवः परिकीर्त्तितः॥ विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्नः शोकसागरे॥ शिवेति शब्दमुच्चार्य्य लभते सशिवं नरः॥ पापघ्ने वर्त्तते शिश्च वश्च मुक्तिप्रदे तथा॥ पापघ्नो मोक्षदो नृणां शिवस्तेन प्रकीर्त्तितः॥ अध्या० ६।५०+५३॥

(२) विद्याकारेणेति॥ विद्याशक्तिस्तेन शक्तिस्वरूपेण॥ तत्र प्रमाणम्॥ या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाद्या परा, सर्वज्ञा भवबन्धछित्तिनिपुणा सर्वाशये संस्थिता॥ दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदं प्रापिता, प्रत्यक्षा भवतीह सा भगवतो बुद्धिप्रदा स्यात्सदा॥ इति देवीभागवते, प्रथमस्कन्धे सूतवाक्यम्॥ अध्या० ३।३॥ पुनः स्कन्दपुराणे सूतसंहितायां यज्ञवैभव खण्डे॥ गुरुमूर्तिधरां गुह्यां गुह्यविज्ञानदायनीम्॥ गुह्यभक्तजनप्रीतां गुह्यायां निहितं नुमः॥ अध्या० ४७।६६॥

अध्या० १३।२०॥ पुनः कङ्कालमालिनीतन्त्रे॥ निर्गुणश्च परब्रह्म गुरुरित्यक्षरद्वयम् ॥ पट० ३ ॥ पुनः कुलार्णवतन्त्रे ॥ यः शिवः सर्वगः सूक्ष्मो निष्कलश्चोन्मनोऽव्ययः ॥ व्योमाकारोऽत्यजोऽनन्तः सकथं पूज्यते प्रिये ॥ अतएव गुरुः साक्षाद् गुरुत्वं समाश्रितः ॥ भक्त्या संपूजयेद्देवि भुक्तिमुक्तिं प्रयच्छति ॥ शिवोऽहमाकृतिर्देवि नरदृग्गोचरो न हि ॥ तस्मात् श्रीगुरुरूपेण शिष्यान्रक्षति सर्वदा ॥ गुरुः सदाशिवः (१) साक्षात्सत्यमेव न संशयः ॥ शिवरूपी गुरुर्नोचेद् भुक्तिं मुक्तिं ददाति कः ॥ पुनः योगिनीतन्त्रे ॥ गुरुमूलमिदं शास्त्रं गुरुमूलमिदं जगत् ॥ गुरुरेव परब्रह्म गुरुरेव शिवः स्वयम् ॥पट० १।२२॥ पुनःकामाख्यातन्त्रे॥ शृणु सारतरं ज्ञानं साधूनां हितकारणम् ॥ गुरुः सदाशिवः प्रोक्त आदिनाथः स उच्यते ॥ महाकाययतो देवः सच्चिदानंद(२) विग्रहः ॥ सनातनः परब्रह्म श्रीधर्मस्त्रिगुणः प्रभुः ॥ पट० ४॥ पुनर्गुप्तसाधनतंत्रे ॥ गुरुरेव परब्रह्म नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥ पट० ३ ॥ पुनः रुद्रयामलोत्तरतन्त्रे ॥ अहं गुरुरहं देवो मन्त्रार्थोऽहं न संशयः ॥ पट० १।६० ॥ पूर्वोक्तप्रमाणानुसारेण शिव

---

(१) सदाशिव इति ॥ कस्मात्सदाशिवेत्याह ॥ ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यत्किञ्चिद् दृश्यते त्विह ॥ तत्सर्वं शिव एवास्ति नात्र कार्य्या विचारणा ॥ सृष्टेः पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा ॥ सृष्टेरन्ते शिवः प्रोक्तस्तेन प्रोक्तः सदाशिवः ॥ तस्माच्च निर्गुणः प्रोक्तः शिव एव ऋषीश्वराः ॥ इति शिवपुराणान्तर्गतज्ञानसंहितायाम् ऋषीं प्रति सूतवाक्यम् ॥ अध्या० ७८।१६ + १८ ॥

(२) सच्चिदानंदविग्रहरिति ॥ सच्चिदानन्दो ब्रह्मणः शिवो वा तस्य विग्रहः स्वरूपो गायत्रीरूपामिति भावः ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ या सन्ध्या (सन्ध्याकाले उपास्य देवता) सैव गायत्री सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ भक्त्या तां ब्राह्मणो नित्यं पूजयेच्च नमेत्तथा ॥ इति देवी भागवते एकादश स्कन्धे ॥ अध्या० १७।१० ॥

एव गुरुरिति सिद्धम् ॥ तत्र कतिविधाः शिवा भवन्तीत्याह ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ ततः परशिवो
नाथ षट् शिवाः परिकीर्त्तिताः॥ इति रुद्रयामलोत्तरतन्त्रे॥ तेनात्र
शिवशब्देन परशिव एवेति बोद्धव्यम् ॥ (यत्पादपद्म युगलम्)
यस्य शिवाख्यस्य गुरोश्चरणकमलद्वयम्। यद्वा, पद्यते ज्ञायते
येन तत्पदमोङ्काररूपम् लिङ्गं वा, तदेव पद्मं, निराकारसाकार-
भेदेनयुगलम्। यदा निराकारावस्थायां तदोङ्कारः शिवाख्यः॥
तत्र प्रमाणम् ॥ अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपञ्चो पशमः शिवोऽ-
द्वैत एवमोङ्कारात्मैव ॥ इति माण्डूकोपनिषदि ॥ १२ ॥ पुनः
श्वेताश्वतरोपनिषदि ॥ यदा तमस्तन्न दिवानरात्रिर्नसन्नचा-
सच्छिव एव केवलः ॥ तदक्षरं (ओङ्कारम्) तत्सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसता पुराणी ॥अध्या०४।१८॥ पुनः पद्मपुराणे
चतुर्थखण्डे ॥ यद्ब्रह्मणः परं ज्योतिः प्रविष्टाक्षरमव्ययम् ॥
योऽन्तरात्मा परं ब्रह्मं स विज्ञेयोमहेश्वरः ॥ एको देवो महादेवः
केवलः परमः शिवः ॥ तदेवाक्षर (ओङ्कारम्) मद्वैतं तदा
नित्यं परं पदम् ॥ अध्या० ६१।३४+३५ ॥ पुनः कुलार्णवतन्त्रे॥
अस्ति देवि परब्रह्मस्वरूपी निष्फलः शिवः ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता
च सर्वेशो निर्मलोदयः ॥ उल्ला० १ ॥ तेनात्र निराकारावस्थायां
शिव इति सिद्धम् ॥ स एव साकारावस्थायां गायत्रीरूपः ॥
तत्र प्रमाणम् ॥ अहमिदं सर्वं जनयिष्यामि यदिदं किञ्चेति
तस्माज्जाया अभवतस्मज्जायायां जायत्वं यच्चासु पुरुषो जायते ॥
इति गोपथब्राह्मणपूर्वार्द्धे ॥ प्र० १ । कं० २ ॥ पुनः कृष्णयजुर्वेदीय
तैत्तरीय संहितायाम् ॥ त्रियस्तेनयहचः त्रियस्तेनयद्गायत्री-
त्रियस्तेनयत्साभिधेन्योवृषरावतीमन्वाह॥२।५।८।४ पुनस्तत्रैव॥
गायत्री वै देवानामेकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता पू० प्र० १।२७॥
ॐ नित्यं शुद्धं निर्विकल्पं निरंजनं निराख्यातमनादिनिधनमेकं

तुरीयं यद्भूतं यद्भवद् भविष्यत् परिमानं सर्वदाऽनवच्छिन्नं परं ब्रह्म तस्माज्जातापरा शक्तिःस्वयं ज्योतिरूपात्मिका (१)॥ इति योगचूडामण्युपनिषदिसृष्टि प्रकरणे ॥ पुनर्वृहन्नीलतन्त्रे ॥ निर्गुणं यत्परब्रह्म ज्योतिरूपनमस्करी ॥ साकार यदि जायेत सर्वदेहेषु देवता ॥ रूपत्रयं सदा भूत्वा देहिना देहभेदतः ॥ तत्र तेषां विशेषार्थं नरदेहवरानने ॥ शक्तिः शिवश्च विज्ञेयोः मम संकेतमुत्तमम् ॥ पट० ८ ॥ पुनर्निरूत्तरतंत्रे ॥ नारीरूपं समास्थाय सैव विश्वं प्रसूयते ॥ पट० २ ॥ पुनः कूर्म्मपुराणे ॥ ओङ्कारवक्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः॥ अध्या० १५।७६ ॥ पुनर्वह्वृचोपनिषदि ॥ ॐदेवी ह्येकाग्रासीत। सैव जगदण्डमसृजत । कामकलेति विज्ञायते । शृंगारकलेति विज्ञायते ॥ तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत् ॥ विष्णुरजीजनत । रुद्रो अजीजनत। सर्वे मरुद्गणा अजीजनत। गन्धर्वाऽप्सरसः किन्नरावादित्रवादिनः समन्तादजीजनत् । भोग्यमजीजनत् । सर्वमजीजनत । सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजं मुद्भिजं जरायुजं यत्किञ्चैतत्प्राणिस्थावरजंगमं मनुष्यमजीजनत सैषापराशक्तिः ॥

---

(१) पराशक्तिः स्वयं ज्योतिरपात्मिकेति ॥ यो वै गायत्रीं ज्योतिः पक्षाऽयं एवं वेद ॥ इति कृष्णयजुर्वेदसंहितायाम् ॥ ७।२।१०।२॥ पुनर्गोपथ ब्राह्मणे ॥ अथ गायत्रीं हरिणीं ज्योतिष्पक्षां, सर्वैर्यज्ञैर्यजमानं स्वर्गलोकमभिवहन्तीं विद्यात् ॥ पू० । ३।७। पुनरैत्तरीयब्राह्मणे ॥ यो वै गायत्रीं पक्षिणीं चक्षुष्मतीं ज्योतिष्मतीं भास्वतीं वेद, गायत्र्या पक्षिण्या ज्योतिष्मत्या भास्वत्या स्वर्गलोकमेति ॥ ४।४।२३ ॥ पुनः शतपथ ब्राह्मणे ॥ यो गायत्रीं ँ हरिणीं ज्योतिष्पक्षां यजमान ँ स्वर्गंलोकमभिवहन्तीं विद्यात् ॥ ११।४। २।८ ॥ तेन ज्योतिरूपात्मिकाशब्देन गायत्रीतिबोधव्यम् ॥ कस्माच्छक्तिरित्याह ॥ शतकोटि महादिव्य योगिनी प्रतिकारणात्॥ तीव्रस्फूर्तिं प्रदानाच्च शक्तिरित्यभिधीयते ॥ इति कुलार्णवतन्त्रे ॥ उल्ला० १७ ।

पुनर्गन्धर्वतन्त्रे ॥ सच्चित्सुखमयः शम्भुस्त्रीरूपः सर्वकर्म्मणि ॥ पट. ३२ ॥ पुनर्भृङ्गीशतन्त्रे ॥ यः शिवः सा तु गायत्री गायत्रीया शिवस्तुसा ॥ मूढा एवं न जानन्ति ह्यज्ञानतमसावृताः ॥ सकलेनैव रूपेण गायत्री शिवमुच्यते ॥ निष्कलेनैव भावेन गायत्री कथ्यते शिवः ॥ स शिवः सकलो भूत्वा गायत्र्या समुपस्थितः ॥ सृष्टिसम्पादनार्थाय ब्राह्मणानां हिताय च ॥ पट० १ ॥ तेनात्र साकारावस्थायां शिवो गायत्रीति सिद्धम् ॥ एतद्भेदेन युगलम् ॥ (दैवमनुजाऽसुरसिद्धसङ्घाः) देवाः [कस्माद्देवाः ? देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद् द्युस्थानो भवतीति नैरुक्ताः ॥ निरुक्तदैवतकाण्डम् अध्या० ७ खं० १५ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ यो देवः स देवता ॥ निरु० दै० १।१५ ॥ पुनः शतपथ ब्राह्मणे ॥ विद्वांसो हिदेवः असुराः प्राणपोशकामोक्षोपायरहिताः ॥ ३।७।३।१० ॥ पुनस्तत्रैव ॥ सत्यं देवा अनृतं मनुष्याः ॥ १।१।२।१७ ॥] ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः, बृहस्पतिशुक्राचार्य्यादयो विद्वांसो वा । मनुजा मनुष्याः ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ मनुर्हवाऽअग्रे यज्ञेन तदनुकृत्येमाः प्रजायन्ते तस्मादाह मनुष्यइति ॥ श. ब्रा: ६।५।२।७ ॥ असुराः सुरविरोधिनो हिरण्यकसिपुहिरणाक्षाऽरुणाक्षरावणप्रभृतयः, प्राणपोशका विषयासक्ता मोक्षोपायरहिता राक्षसाः । सिद्धाः सिद्धिं प्राप्ता विश्वामित्रदत्तात्रयोपमन्यादयो ब्रह्मर्षयः, एतेषां । सङ्घाः समूहाः (ध्यायन्ति) स्मरन्ति उपासते वा ॥ शिव एव ध्येय इति स्पष्टीक्रियते ॥ अथहैनं पैप्पलादो ब्रह्माणमुवाच, भोभगवन् ब्रह्मविष्णुरुद्राणामध्ये कोवा अधिकतरो ध्येयंस्यात् तत्वमेव नोब्रूहीति । तस्मै सहोवाच । एक एव शिवो नित्यस्ततोऽन्यत्सकलं मृषा, तस्मात्सर्वान्परित्यज्य ध्येयान् विष्णवादिकान् सुरान् ॥ शिव एव सदा ध्येयस्संसारमोचकः ॥ इति शरभोपनिषदि ॥ पुनर्महाभारतान्तर्गतशान्ति-

पर्य्यणि जनकं प्रति याज्ञवल्क्यवाक्यम् ॥ तस्मादुपासस्व परं महच्छुचिः शिवं विमोक्षं विमलं पवित्रम् ॥ अध्या० ३१८।१११ ॥ पुनः श्वेताश्वतरोपनिषदि ॥ सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ॥ विश्वस्यैकं परिवेष्टितारंज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥ अध्या० ४। १४ ॥ तेनात्र शिव एव ध्येय इति सिद्धम् ॥ किंकृत्वा ध्यायन्ति ? (सुदुस्तरजपादिक-योगदानम्) सुष्ठु दुस्तरंमतिदुःसाध्यम् । जपादिकं (१) जपयज्ञादिकम् । योगदानम्, योगश्चित्तवृत्तिनिरोधस्तस्य दानं संयोजनम् । यद्वा, योगो यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यानसमाधयस्तेषां साधनम् । दानं द्रव्यादीनां तन्निमित्तदानं

---

(१) जपादिकमिति ॥ जपद्दुच्चारे वाचि । जिह्वोष्ठादिव्यापाररहितं शब्दार्थयोश्चिन्तनं हृदुच्चारः।जपति मंत्रसाधकः इति दुर्गादासः। यद्वा, विधानेन मन्त्रोच्चारणम् ॥ इति शब्दकल्पद्रुमे । पुनर्नीलतन्त्रे ॥ जपस्यादक्षरावृत्तिर्वाचिकोपांशुमानसैः ॥ उपांशुपुष्टिकामानां मानसो बुद्धिमिच्छताम् ॥ वाचिकोमारणे शस्तस्त्रिविधो जप ईरितः ॥ पट० ५ ॥ उच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः ॥ उत्तमो मानसो देवि त्रिविधः कथितः प्रिये ॥ अतिह्रस्वव्याधिहेतुरतिदीर्घस्तपः क्षयः ॥ अक्षराक्षर-संयुक्तथाजपेन्मौक्तिकपंक्तिवत् ॥ जातसूतकमादौ स्यात् तदन्ते मृतसूतकम् ॥ सूतकद्वय संयुक्तो यो मन्त्रः स न सिद्ध्यति ॥ अतस्तद्रहितं कृत्वा मन्त्रमावर्त्तयेत्सदा ॥ सूतकद्वया-संयुक्तो यो मन्त्रः स हि सिद्ध्यति ॥ इति कुलार्णवतन्त्रे ॥ उल्ला० १५ ॥ अत्र जप-सम्पत्तिमाह ॥ मनः संहरणं शौचं मौनं मन्त्रं विचिन्तनम् ॥ अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः ॥ इति नीलतन्त्रे ॥ पट० ५ ॥ अथ जपयज्ञस्य फलमाह ॥ जप-यज्ञस्य वै यज्ञाः कलांनार्हन्ति षोडशीम् ॥ जपिनो नोपसर्पन्तिव्याधयश्चाधमग्रहाः ॥ भुक्ति-मुक्तिमृत्युजयो जपेन प्राप्नुयात्फलम् ॥ इति अग्निपुराणे ॥ अध्या० ३७४।३३+ ३४ ॥ पुनः कुलार्णवतन्त्रे ॥ जपयज्ञात्परो यज्ञो नाऽपरोस्तीह कश्चन ॥ तस्माज्जपेन धर्म्मार्थकाममोक्षाश्च सांधयेत् ॥ उल्ला० १५ ॥

त्यागम् [कृत्वा] आचरित्वा ॥ कथम्भूतम्पादयुगलम् ? (सकलार्थदम्) सकलानां सम्पूर्णानाम्प्रयोजनानां दातारम् ॥ अत्र शिवाख्यस्य गुरोः पादसेवनस्य माहात्म्यमाह ॥ गुरुपादोदकं पुण्यं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ सर्वतीर्थावगाहे तु यत्फलं प्राप्नुयान्नरः । तत्फलं प्राप्नुयान्मर्त्योगुरुपादकणाजलात् ॥ स्नातः सर्वतीर्थेषु योऽभिषेकं समाचरेत् ॥ पीतं पूतं च कुरुते सर्वपापेभ्य एव हि ॥ विशेषतो महामाये तत्क्षणाच्छिवतां व्रजेत् ॥ इति योगिनीतन्त्रे ॥ पट० १ । ४८+५१ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ गुरोः पादरजो मूर्ध्नि धारयेद्‌ यस्तु मानवः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स शिवो नात्र संशयः ॥ तेनैव रजसा देवि ? तिलकं यस्तु कारयेत् ॥ चतुर्भुजो [विष्णुः] न सन्देहः स वैकुण्ठपतिर्भवेत् ॥ तद्रजो भक्षते येन एकस्मिन् दिवसेऽपि च ॥ कोटिमहायज्ञफलं लभते स न संशयः ॥ पट०१। ५२+५४ ॥ पुनः स्कन्दपुराणे सूतसंहितान्तरगतब्रह्मगीतायाम् ॥ शिवचरणस्मरणेन पूजया च स्वकतमसः परिमुच्यते हि जन्तुः ॥ न हि मरणप्रभवप्रणाशहेतुः शिवचरणस्मरणादृतेऽस्ति किञ्चित् अध्या० ६।४६ ॥ पुनः कुलार्णवतन्त्रे ॥ ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलगुरोः पदम् ॥ मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ गुरुमूला क्रिया सर्वा लोकेऽस्मिन् कुलनायिके ॥ तस्मात्सेव्योगुरुर्नित्यं(१) सिद्धयर्थं भक्तिसंयुतैः ॥उल्लास०१२॥ (च) च इति पाद-

---

(१) सेव्यो गुरुर्नित्यमिति ।। अथ गुरोः सेवनस्य फलं च कालमाह ।। तत्र शिवसंहितायाम् ।। भवेद्वीर्य्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा ।। अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्य्या चातिदुःखदा ।। गुरुं सन्तोष्य यत्नेन यो वै विद्यामुपासते ।। अविलम्बेन विद्यायास्तस्याः फलमवाप्नुयात् ।। गुरुप्रसादतः सर्वंलभ्यते शुभमात्मनः ।। तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यंमन्यथा न शुभं भवेत् ।। पट० ३।११ + १४ ।। एकग्रामे स्थितः शिष्यस्त्रि-

पूरणे (तम्) तम् (स्वगुरुम्) गृणाति उपदिशति गायत्र्यादि(१)

सन्ध्यं प्रणमेद्गुरुम् ॥ क्रोशमात्रस्थितः शिष्योगुरुम्प्रतिदिनं नमेत् ॥ अर्द्धयोजनगः शिष्यः प्रणमेत्पञ्चपर्वसु ॥ एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधिम् ॥ तत्संख्यादिगतैर्मासैः श्रीगुरुंप्रणमेत्प्रिये ॥ दूरदेशे स्थिते शिष्ये भक्त्या तत्सन्निधिं गतः ॥ तत्र योजनसंख्यातो विशेषात्प्रणमेद्गुरुम् ॥ अतिदूरगतः शिष्यो यदिच्छास्यात्तदा व्रजेत् ॥ रिक्तहस्तश्च नोपेयाद्राजानं दैवतं गुरुम् ॥ फलपुष्पाम्बराकल्पैर्यथा शक्त्या समर्च्चयेत् ॥ एवं यो न चरेद्देवि ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत् ॥ इति कुलार्णवतन्त्रे ॥ उल्ला० १२ ॥ पूर्वोक्ताभिप्रायेण सर्वदेवमनुजाऽसुरसिद्धिसंघाः प्रदोषसमये स्वगुरुं शिवमुपासते ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि सारं ब्रवीम्युपनिषद्धृदयं ब्रवीमि ॥ संसारमल्वणमसारमवाप्य जन्तोः सारोयमीश्वरपदाम्बुहरस्य सेवा ॥ येनार्चयन्ति गिरिशं (शिवम्) समये प्रदोपे येनार्चितं शिवमपि प्रणमन्ति चान्ये ॥ एतत्कथां श्रुतिपुटेनं पिबन्ति मूढास्ते जन्म जन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः ॥ ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य कुर्वन्त्यनन्य मनसोऽङ्घ्रिसरोजपूजाम् ॥ नित्यं प्रवृद्ध धन धान्य कलत्र पुत्रसौभाग्य संपदधिकास्त इहैव लोके ॥ कैलास शैल भवने त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य कनकाञ्चितरत्नपीठे ॥ नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे ॥ वाग्देवीधृतवल्लकीशतमखो वेणुं दधत्पद्मजस्तालोइन्द्र करोरमा भगवती गेय प्रयोगान्विता ॥ विष्णुः सान्द्रमृदंगवादनपटुर्देवाः समन्तात्स्थिताः सेवन्ते तमनुप्रदोप समये देवं मृडानी पतिम् ॥ गन्धर्वयक्षपतयोरगसिद्धसाध्याविद्याधरामरवराप्सरसां गणाश्च ॥ येऽन्ये त्रिलोकनिलयः सहभूतवर्गाः प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः ॥ अतः प्रदोपेशिव एक एव पूज्योऽथ नान्ये हरिपद्मजाद्याः ॥ तस्मिन् महेशे विधि नेज्यमाने स प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः ॥ इति स्कन्दपुराणे ब्रह्मखंडे धर्म्मारण्य माहात्म्ये ॥ अध्या० ४।७२ + ७१ ॥

(१) गायत्र्यादि वैदिकमंत्रानिति ॥ अथ गायत्रीमन्त्रमाह ॥ तत्रोङ्कार एव गायत्रीमन्त्रेति स्पष्टो क्रियते ॥ ओंकारस्तु परब्रह्म गायत्री स्यात्तदक्षरम् ॥ एवं मन्त्रो महायोगः साक्षात्सार उदाहृतः ॥ योऽधीतेऽहन्य हन्येतां गायत्रीं वेदमातरम् ॥ विज्ञायार्थं ब्रह्म-

वैदिकमन्त्रान् वेदादिशास्त्राणि ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवेभ्यः इति । यद्वा, गीर्य्यतेस्तूयते देवगन्धर्वमनुष्यराक्षसैस्तेन गायत्र्यादिवैदिकतान्त्रिकादिमन्त्रोपदेष्टारम् शिवाख्यं स्वगुरुम् (नमामि) प्रणमामि नमस्करोमीति भावः ॥ यथा पद्मपुराणे विल्वकेश्वरमाहात्मे-वेदसाराख्यशिवसहस्रनाम्नि ॥ नमः पराय देवाय शङ्कराय महात्मने ॥ नमः शिवाय भर्गाय गुणातीताय वेधसे ॥ नमोविरूपरूपाय शक्तिगम्यायते नमः ॥ देवदानवदैत्यानां गुरवेतेनमोनमः ॥ १,३,'४०, ३८ ॥ कथम्भूतं शिवाख्यं गुरुम्? (आर्य्यम्) आर्य्यः

न्चारी स याति परमां गतिम् ॥ न गायत्र्या परं जाप्यमेतद्विज्ञानमुच्यते ॥ इत्यौशनससंहितायाम् ॥ अध्या० ३।५२+५४ ॥ पुनः पातञ्जलयोगसूत्रे ॥ तस्य वाचकः प्रणवः । तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ पाद १। सू० २७+२८ ॥ पुनः प्राणतोषिणीतन्त्रे प्रथमसर्गकाण्डे वर्णाभिधानकथने ॥ सावित्री त्रिशिखो ब्रह्म त्रिगुणो गुणजीवकः ॥ आदिबीजो वेदसारो वेदबीजमतः परम् ॥ गायत्रीबीजपञ्चांशो मन्त्रविद्याप्रदः प्रभुः ॥ इत्योंकारकथन परिच्छेदे ॥८॥ ओम् क्रतोस्मरक्लिवे स्मर ॥ श० ब्रा० १।१४।६।१ ॥ तेनोंकार एव गायत्री मंत्रेति सिद्धम् ॥ यद्वा, ओमिति ब्रह्म तैत्तरीयोपनिषदि ८।१ ॥ ब्रह्म गायत्री ब्राह्मणेषु ॥ श० ब्रा० ४।४।१।१८ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ गायत्री ब्रह्मगायत्री ब्रह्मवर्चसी ॥ शा० ब्रा० ४।१।१।१४ तेन गायत्र्योंकारस्तस्या उपासनाविधिः प्रतिपादितो तत्सवितुरिति० चतुर्विंशाक्षरो गायत्रो छन्द भेदः सावित्रीं गायत्रो मन्त्रवेति मंत्रो ज्ञातव्यः ॥ अथ गायत्रीमन्त्रोद्धारमाह ॥ श्रावयित्वात्रिधातारं सर्वमन्त्रमयं शिवे ॥ व्याहृतित्रय (भूर्भुवः स्वः) मुच्चार्य्य सावित्रीं (गायत्रीं) श्रावयेद्गुरुः ॥ आदौ तत्सवितुः पश्चाद्वरेण्यपदमुच्चरेत् ॥ भर्गः पश्चान्ते देवस्य धीमही तिपदं म्वदेत् ॥ ततस्तु परमेशानि धियो योनः प्रचोदयात् ॥ पुनः प्रणवमुच्चार्य्य सावित्र्यर्थं गुरुर्वदेत् ॥ इति महानिर्वाणतन्त्रे वेदारम्भसंस्कारे सावित्र्युपदेश प्रकरणे ॥ उल्ला० ३।३२ पुनर्गुप्तसाधनतन्त्रे ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ देवदेव महादेव संसारार्णवतारक ॥ वेदमातेति विख्याता गायत्री च कथं भवेत् ॥ श्रीशिवउवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गायत्रीं

पुं० [अर्तुं सदाचरितुं योग्यः । ऋ-एयत्] स्वामिन्, गुरौ, सुहृदि च, श्रेष्ठकुलोत्पन्ने [ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याद्यास्तस्मिन्कुलोत्पन्ने] पूज्ये, श्रेष्ठे, संगते, नाट्योक्ते, मान्ये, उदारचरिते, शान्तचित्ते॥ तत्राऽस्मिन्स्थाने आर्य्यशब्दो गुरुपक्षे विशिष्टस्तस्य लक्षणमाह॥ ज्ञानी तपस्वी सन्तोषी सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ दाता दयालुर्नम्रश्च आर्य्यस्यादष्टभिर्गुणैः ॥ पुनः॥ श्रुतिस्मृतिसदाचारः शुद्धाहारः सुनीतिमान्॥ प्रीतिमान् यो भवेन्नित्यं स आर्य्यः परिकीर्त्तितः॥ इति शब्दस्तोममहानिधौ ॥ पुनः शिवपुराणान्तर्गतविद्येश्वरसंहितायाम् ॥ आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभावमार्य्यंतमीशमजरामरमात्मदेवम् ॥ पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं संभावयेन्मनसि शङ्करमम्बिकेशम्॥ अध्या० ६।१६॥ पुनः पद्मपुराणान्तर्गतशिवगीतायां रामचन्द्रम्प्रति शिववाक्यम् ॥ आर्य्योऽहम् भगवानीशस्तेजोऽहं चादिरप्यहम्॥ अध्या० ६। १६॥ पुनर्यजुर्वेदसंहितायाम्॥ शिपिविष्टायच नमः॥ अध्या० १६। मं० २९ [नमस्त्रिलोचनायाथ शिपिविष्टाय बंधवे॥ इतिवेद-

---

परमाक्षरीम् ।। वेदमातेति विख्याता सर्वतंत्रप्रपूजिता ।। हालाहलं* (ओङ्कारम्) समुद्धृत्य नाभ्यक्षरं समुद्धरेत् ।। वामकर्णयुतं कृत्वापुनर्नाभि समुद्धरेत् ।। कर्णयुक्तं मूर्ध्नि रेफं ततश्च सुरवन्दिते ।। वारुणं रसनायुक्तं चन्द्रबीजं ततः परम् ।। शान्तयुक्तं सर्गयुतञ्चैवं व्याहृतिमुच्च रेत् ।। तत्पदं च समुद्धृत्य सवितुस्तदनन्तरम् ।। वरेण्यमिति ।। चोच्चार्य्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।। धियोयोनः प्रचोदयात् प्रणवंतदनन्तरम् ।। इति जप्त्वामहे शानि साक्षान्नारायणो भवेत् ।। प० १२ ।। अथ गायत्रीं मंत्रस्योपदशमाह ।।

---

* (२) हालाहलम् ओंकारम् ।। नाभिः भकारः । वामकर्ण, दीर्घ ऊकारः । तेन भू ।। पुनर्नाभिः भं कारः । कर्ण ह्रस्व उकारः । सरेफयुक्तं, वारुण वकारः, रसनारेफः । तेनर्भुवः ।। चन्द्रबीजं सकारः, शान्तो दकारः, सर्गोः, विसर्गः, तयोर्युक्तम्—तेनस्वः ।।

साराख्यशिवसहस्रनाम्नि तेनशिपिविष्टः शिवः ॥ शिपिविष्टोना-
मार्य्यः ॥ इतिनिरू०नै० ५।८॥ तेनात्रार्य्यशब्देन शिव इति सिद्धम्॥
तेनार्य्यसंज्ञकम्॥ कथम्भूतमार्य्यं शिवम्? ॥ (देवम्) स्वप्रकाशस्व-
रूपम्॥ तस्य लक्षणमाह॥ देशकालविरोधेन वर्त्तमानात् कुलागमे॥
वशीकृतजगज्जीवाद्देव इत्यभिधीयते ॥ इति कुलार्णवतन्त्रे ॥
पुनस्तत्रैव ॥ देहमास्थाय भक्तानां वरदानाच्च पार्वति ॥ तापत्रया-
दिशमनाद्देवता परिकीर्तिता ॥ सप्तदशोल्लासे ॥ पुनः सूतसंहि-
तायां यज्ञवैभवखण्डे ॥ स एव पूजनीयस्तुब्रह्मविष्णुसुरोत्तमैः ॥
तत्प्रसादेन सर्वेषां देवत्वं न स्वभावतः॥ स्वभावाद्देवदेवत्वं देव-
देवस्य शूलिनः ॥ अध्या० १६।४०+४१ ॥ यद्वा, स्वोपदेशेन
गायत्रीमन्त्रोपदेशेन ज्ञानमोक्षप्रदायकम् ॥ यथा ॥ ज्ञानार्थं
शङ्करं यजेत् ॥ कथम्भूतमार्य्यं शिवम्? (अमलम्) शुद्धम्
निर्मलम्। यद्वा, मलकर्म्मादिजालं तेन रहितम् शाक्तस्वरूपम्,

गायन्तित्वा गायत्रिणः ॥ कृष्णयजुर्वेद १।६।१२।२ ॥ पुनस्तत्रैव गायत्रीहि ब्राह्मणः ५।२।३।२ ॥ पुनरैत्तरीय ब्राह्मणे ॥ गायत्र्यो ब्राह्मणः ॥ १।५।२८ ॥ तेन, गायत्रींब्राह्मणस्यानुब्रूयाद्गायत्र्योवैब्राह्मणस्तेजोवैब्रह्मवर्चसंगायत्रीतेजसैवेनंब्रह्मवर्च-सेन समर्धयति ॥ इति ऐत्तरीय ब्रा० १।५।२८ ॥ पुनः शतपथ ब्राह्मणे । सावित्र्या सहब्राह्मणः, सद्योहन्वावब्राह्मणायनुब्रूयादाग्नेयोवैब्राह्मणःसद्योवाअग्निर्जायते तस्मात्सद्य एव ब्राह्मणायानुब्रूयात् ॥ ११।५।४।११ ॥ तत्र सृष्ट्यादौ कः प्रथमो ब्राह्मणो बभूवेंत्याह । शिव एवादि ब्राह्मणो बभूव । तत्र प्रमाणम् ॥ यदि शक्तिश्चगायत्री तत्रापि ब्राह्मणः शिवः ॥ इति गायत्रीतन्त्रेद्वितीय ब्राह्मणपटले ॥ पुनर्देवी भागवतेएका-दशस्कन्धे नारदं प्रति नारायणवाक्यम् ॥ आदि ब्राह्मणभूतेन (रुद्रेण) त्रिपुण्ड्रं भस्मनाधृतम् ॥ अध्या० ९।३२ ॥ तेन शिवएवादि ब्राह्मणो भूत्वासृष्ट्यादौ उपदेष्टा बभूव ॥ अथ गायत्रीमन्त्रस्योत्पत्तिमाह ॥ तत्र स्कन्दपुराणे आवन्तिकाखण्डे पूर्वा० पार्वतींप्रति शिववाक्यम् ॥ प्राकृतं कल्पसंज्ञे तु प्रथमं प्रथमं मया वक्त्राद्-

शक्तिर्गायत्र्यैव तस्य शिवस्य साकारस्वरूपमिति भावः ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ परमेश्वरस्य हि मलकर्म्मादिपाशजालसम्भवेन प्राकृतं शरीरं न भवति किन्तु शाक्तं शक्तिरूपैरिति शैवदर्शने ॥ पुनः श्वेताश्वतरोपनिषदि ॥ एको वर्णो बहुधा शक्ति योगाद्वर्णान्नेकान् [गायत्रीसावित्रीसरस्वतीस्वरूपान्] निहतान्दधाति ॥ अध्या॰ ४।१।५ ॥ चिन्मात्राश्रया माया शक्त्याकारेद्विजोत्तमाः ॥ अनुप्रविष्टायासंविन्निर्विकल्पा स्वयंप्रभा ॥ सदाकारा परानन्दा संसारोच्छेदकारिणी ॥ सा शिवा परमा देवी शिवाभिन्ना शिवङ्करी ॥ इति स्कन्दपुराणे सूतसंहितायां यज्ञवैभवखण्डे अध्या॰ १३।२+३ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ एषा सा सात्विणी शक्तिः शंकरस्याऽपि शंकरी ॥ शिवा हीना तयाहीना शिवः सान्नान्निरर्थकः ॥ न शिवेन विना शक्तिर्नशक्तिरहितः शिवः ॥ उमाशंकरयोरैक्यं यः पश्यति स पश्यति उमाशंकरयोर्भेदं ये पश्यन्ति नराधमाः ॥ अधोमुखोर्ध्वपादास्ते यास्यन्ति नरकार्णवम् ॥ अध्या॰ १३।२८+३१ ॥ पुनस्तत्रैव ॥

त्यादितो देवि पुरुषः कपिलः कृतिः ॥ ततः स पुरुषो दिव्यः किंकरोमीत्युपस्थितः ॥ विभजात्मनमित्युक्तो मयान्तर्ध्यानगोऽभवत् ॥ निर्वाणस्येवदीपस्य गतिस्तस्यन लक्षिता ॥ ततस्तस्याभवश्चिन्ताकथमात्मा विभज्यते ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य चतुर्मित्योत्थितस्ततः ॥ त्रिवर्णस्वररूपी च चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ ऋग्यजुः सामनामाच ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ व्याप्नुवन् सकलांल्लोकान्प्रभावैः पृथुभिस्तदा ॥ ओङ्कार इति तस्याख्या मयादत्ता प्रसादतः ॥ वदोक्ताभिरुदाराभिर्वाणीभिः समलंकृतः ॥ हृदयात्तस्य देवस्यवषट्कारः समुत्थितः ॥ छन्दसांप्रवरा देवी चतुर्विंशाक्षरा परा ॥ षट्कुक्षिः सन्निपादाच पंच शीर्षोपलक्षिता ॥ समीपवर्त्तिनीदेवी पार्श्वतत्रन्यवस्थिता ॥ गायत्रीमधुरा भाषा सावित्री लोकविश्रुता ॥ सचोंकारी मयाप्रोक्तो गायत्र्यासहपार्वति ॥ सृष्टिंकुरु ममादेशा-द्विचित्रा मनयासह ॥ इत्युक्तोऽग्निशिखो भूत्वा हिरण्य सदृशाकृतिः ॥ सृष्टिमुत्पादयामास स्वशरीरान्ममाज्ञया ॥ अध्याय ५२।२+११ ॥

भक्तियुक्तजनचित्तपंकजे भुक्तिमुक्तिफलदः पुरातनः ॥ शक्ति-युक्तपरविग्रहः शिवः सत्यमेव सततं प्रकाशते ॥ अध्या० २६। ३४ ॥ पुनः शिवपुराणे कैलाससंहितायाम् ॥ ओमितीदं सर्व-मितिश्रुतिराह पुरातनी ॥ तस्मादेतत्युपक्रम्य जगत्सृष्टिः प्रकीर्तिता ॥ तस्याः श्रुतेस्तु तात्पर्य्यं वक्ष्यामि श्रूयतामिदम् ॥ शिव-शक्तिसमायोगः परमात्मेति निश्चितम् ॥ अध्या० १०।१३३+१३४॥ पुनर्बृहन्नीलतन्त्रे ॥ शक्तिं विना महेशानि नास्ति किञ्चिन्मम-प्रिये ॥ शक्तिर्हि ब्रह्मणो रूपं शक्तिरूपं वरानने ॥ शक्तिं विना महेशा-नि न किञ्चिन्ममगोचरे ॥ पट० ८ ॥ पुनर्निरुत्तरतन्त्रे ॥ शिव-शक्तिर्द्विधा देवि निर्गुणा सगुणाऽपि च ॥ निर्गुणा ज्योतिषां वृन्दं परं ब्रह्म सनातनी ॥ पट० २ ॥ पुनर्गन्धर्वतन्त्रे ॥ पुरुषः प्रकृति-श्चैव नित्योद्वौ समुपस्थितौ ॥ सगुणाधिवला देवी निर्गुणो निर्बलः पुमान् ॥ पट० ३६ ॥ पुनः शिवपुराणे कैलाससंहितायाम् संन्या-सप्रकरणे पार्वतीं प्रति शिववाक्यम् ॥ रूपं भगवतो(१) [गायत्री] साक्षाच्छंकरार्द्धशरीरिणी ॥ पञ्चवक्त्रा दशभुजा त्रिपञ्चनयनो-ज्वला ॥ नवरत्नकिरीटोद्यच्चन्द्रलेखावलम्बिनी ॥ शुद्धस्फटिक-संकाशा दशायुधधरा शुभा ॥ हारकेयूरकटकरशनानूपुरादिभिः ॥ भूषितावयवा देवी ऋषिगन्धर्वदानवैः ॥ मानवैस्तु सदा सेव्यास-र्वात्मा व्यापिका शिवा ॥ सदाशिवस्य देवस्य धर्मपत्नीमनोहरा ॥ योऽन्यथाननयेत्पापी गायत्रीं शिवरूपिणीम् ॥ अध्या० ६।५५+ ६० ॥ पुनश्चरककल्पतरौ । सा शक्तिः प्रथमलोहितशुक्लकृष्णव-

---

(१) भगवतीति ॥ कस्माद्गायत्री भगवतीत्याह ॥ सेव्यतेयासुरैः सर्वैस्तांश्चैव भजते यतः ॥ धातुर्भजेति सेवायां भगवत्येव सास्मृता ॥ पुनः ॥ भयं नरकमाहुः स्यात् कुगति प्रापणेषु च ॥ अवति रक्षणे त्राणे भगवत्येव मंगला ॥ इति देवीपुराणे ॥ अध्याय० ३७।४७+७० ॥

द्राभासागायत्रीनाम देवतापरसूक्ष्मध्वनिलक्षणावाग्देवतारूपेण [सरस्वतीस्वरूपेण, विवर्तिता बभूव, सा सर्गकाले परब्रह्म,सा पुनः स्वयंशान्तिविद्या प्रतिष्ठानिवृत्तिचतस्रः शक्तयो भूत्वा परमव्योमरूपः परमात्मा शिवो बभूव ॥ इति चरकसंहिताभाष्ये सूत्रस्थाने ॥ १० ॥ तेनात्र पूर्वोक्तप्रमाणेनगायत्र्येव परशिवस्य साकारस्वरूपेति सिद्धम् ॥ स एवास्माकं गुरुः शिवः शक्त्याख्यगायत्री स्वरूपेणपञ्चभिः श्लोकैः स्तूयते ॥ १ ॥

भाषा का हिन्दी में संक्षेपानुवाद।

सृष्टि के आदि तथा सतयुग में केवल सच्चिदानन्द परमात्मा शिव ही सब से पहिले देवतों, राक्षसों, गन्धर्वों, किन्नरों, और मनुष्यों करिके गुरु रूप से उपासना किया गया और अब भी वही रूपान्तर से किया जाता है, इससे उसी शिवरूप आदि उपास्य गुरू का अवलम्बन करिके यह स्तोत्र रचा गया कि जिसकी भाष्य आरम्भ होती है ॥

मंगला चरणम्।

दोहा०—अश्वा रूढा गार्गी हैं, कुल देव [देवता] हमारि।
दूर्गाहू ताको भनैं, बुध जन मनै विचारि ॥ १ ॥
वन्दौं तेहि के चरण युग, परम सुमंगल हेतु।
पार जान संसार सो, प्रमुदित मन लखि सेतु ॥ २ ॥
नाना शास्त्र मुनीन मत, पढ़ि अवलम्बि विचारि।
गायत्री स्तोत्र की, आर्य्य भाष्य हिय धारि ॥ ३ ॥
भाषा में वरणन करौं, जेहिं बुध जन हरषाय।
ग्रहण करैं विनती करत, शाक्त सुनौ यह भाय ॥ ४ ॥

मंगल तीन प्रकार का होता है, आशिर्वाद वाची, नमस्कार वाची, क्रियावाची, और वस्तु निर्देशवाची। यहां पर गुरू का नमस्कार ही मंगल है इससे भाष्य करने के पूर्व इस बात का बताना अत्यावश्यक है कि

संसार में गुरू कितने प्रकार के होते हैं, अतएव पहिले गुरुओं को निरूपण करते हैं। नारदीय पुराण में लिखा है कि यही प्रश्न कल्माषपाद ने एक ब्रह्मराक्षस से किया था, सो उस राक्षस ने कहा कि हे सुमित्र सखे, संसार में आदर के साथ पूजने और प्रणाम करने योग्य गुरू बहुत हैं सो उनको मैं तुमसे कहता हूँ उसे ध्यान देकर सुनौ। वेदों को पढ़ाने वाला, वेदार्थ का बोध कराने वाला, शास्त्र को कहने वाला, धर्म्म को कहने वाला, नीति शास्त्र का उपदेश करने वाला, गायत्री इत्यादि मन्त्रों की दीक्षा तथा उपदेश और उनकी व्याख्या करने वाला, वेद-सम्बन्धी शंकाओं को हरने वाला, व्रतादिकों का उपदेश करने वाला, भय से रक्षा करने वाला, अन्न देने वाला, ससुर, मामा, ज्येष्ठ भाई, पिता, यज्ञोपवीत कराने वाला, निषेक (१) कराने वाला, संस्कार कराने वाला, यह सब गुरू हैं। [ना. पु. अ. ९।८५+९१] इन सब गुरूओं में से केवल गायत्री इत्यादि मन्त्रों को उपदेश करने वाले, वेदों की व्याख्या करने वाले, वेद-सम्बन्धी शंकाओं को हरने वाले, तथा आत्मज्ञान का उपदेश कर मोक्ष देने वाले को गुरू शब्द में ग्रहण करते हैं। अब गुरू शब्द का अक्षरार्थ करते हैं। गुरू शब्द में जो गकार है सो सिद्धि को देने वाली, और रकार पापों को जलाने वाली, और उकार शिव वाचक है, इन्हीं तीनौ अक्षर और मात्रा से गुरू शब्द बना। फिर, गकार ज्ञान सम्पत्ती है, रकार तत्त्व को प्रकाश करने वाली है, और उकार शिव तदात्मक अर्थात् शिव भाव को देने वाली है इससे इन्हीं तीनौ के मेल से गुरू शब्द बना॥ इससे पूर्वोक्त लक्षण गुरू शब्द के शिव ही में घटित हो सकते हैं जैसा कि संस्कृत प्रमाणों से सिद्ध हुआ है और सृष्टि के आदि में केवल शिव ही उपास्य माने गये और अब भी विद्वान् लोग उन्हीं को सर्व रूप से मानते हैं।

---

(१) निषेक संस्कार गर्भाधान के समय वीर्य्य सिंचन के समय होता है॥

(यत्पादपद्मयुगलम्) जिन शिवाख्य गुरू के कमल स्वरूपी दोनौ चरणों को। अथवा जिससे परमात्मा जाना जाय उसको पद कहते हैं सो उस परमात्मा शिव का ज्ञापक ओङ्कार है और वह ओंकार लेखन प्रणाली में पद्माकार (ॐ) लिखा जाता है कि जिससे उसको पद्म कह सकते हैं, सो वह ओंकार निराकार साकार भेद से युगल अर्थात् दो रूप में परिणित हुआ; जैसे निराकारावस्था में वह शिवसंज्ञक, और साकारावस्था में गायत्री संज्ञक कहलाता है, इससे उसके साकार निराकार अवस्था भेद से युगल अर्थात् दो रूप हुये। सो उस शिव तथा गायत्र्याख्य परमात्मा के पद को (देवमनुजाऽसुरसिद्धसंघाः) देवता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि, तथा बृहस्पति, शुक्राचार्य्य, उपमन्यु आदि विद्वान् लोग। मनुजाः मनुष्य लोग। असुराः हिरण्याक्ष, हिरण्यकसिपु, अरुणाक्ष और रावण इत्यादि प्राणपोशक मोक्ष प्राप्ति के उपायों से रहित राक्षस। सिद्धाः सिद्धियों को प्राप्त किये हुए विश्वामित्र दत्तात्रयादि ब्रह्मर्षि। ऐसे लोगों के संघाः समूह के समूह (ध्यायन्ति) ध्यान तथा स्मरण किया करते हैं। किस प्रकार से और क्या करकै ध्यान करते हैं ? (दुस्तरजपादिक योगदानम्) बहुत कठिन दुःसाध्य क्रियाओं के द्वारा जप यज्ञादिकों को, योग अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोक कर और यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि इत्यादिकों के साधनों को, और नाना प्रकार के द्रव्यों को शिव के निमित्त शिव भक्तों को देकर (कृत्वा) करके। कैसे शिव के चरणों को ध्यान करते हैं ? (सकलार्थदम्) सम्पूर्ण मनोकामनाओं (१) को देने वालों को। (च) पादपूरण अर्थ में है।

(१) सम्पूर्ण मनोकामनाओं को देने वालों को॥ देखिये महात्मा श्रीतुलसीदास जी ने श्रीगुरु के चरणों की वंदना में क्या कहते है—

चौपाई—बन्दौ गुरुपद पदम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥१॥
अमिय मूरिमय चूरण चारू। शमन सकल भव रुज परिवारू॥२॥

(तम्) तिस (स्वगुरुम्) जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशादि को वेदादि शास्त्रों का उपदेश करता है सो गुरू है। अथवा जो देव, मनुष्य, गन्धर्व, राक्षसादिकों से स्तुति किया जाय सो गुरू हैं। ऐसे अपने गायत्री इत्यादि वैदिक तथा तान्त्रिक मन्त्रों के उपदेश करने वाले शिव संज्ञक गुरू को (नमामि) साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ। जैसे ॐनमः पराय देवाय शंकराय महात्मने ॥ नमः शिवाय भर्गाय गुणातीतायवेधसे ॥ नमो विरूपरूपाय शक्तिगम्यामते नमः ॥ इत्यादि० वेदसाराख्य शिवसहस्र-नाममें ॥ कैसे शिवसंज्ञकगुरू को ? (आर्य्यम्) आर्य्य है नाम जिनका तिनको ॥ कैसे आर्य्यसंज्ञक गुरू को ? [देवम्] स्वप्रकाश स्वरूप वाले को। अथवा जो अपने वेदरूपी उपदेशों करिके ज्ञान और मोक्ष को देते हैं तिनको। फिर कैसे आर्य्यस्वरूप शिव को नमस्कार करता हूँ ? [अमलम्] जो पाप तथा अज्ञानरूपी मल जालरूपी शरीर से रहित शुद्ध शाक्त-स्वरूप है अर्थात् गायत्री रूप तैजस शरीर वाले को ॥ अब वही हमारा शिवसंज्ञक गुरू गायत्री स्वरूप से अगले पांच श्लोकों द्वारा स्तुति किया जाता है ॥ १ ॥

सुकृत शंभुतन विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥३॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरणी। कियें तिलक गुणगण वश करणी ॥४॥
श्रीगुरु पद नख मणिगण ज्योती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ॥५॥
दलन मोह तम हंस प्रकासू। बड़े भाग्य उर आँवहिं जासू ॥६॥
उघरहिं बिमल विलोचन हियके। मिटहिं दोष दुःख भव रजनीके ॥७॥
सूझहिं रामचरित मणिमानिक। गुप्त प्रगट जहँ जोजेहि खानिक ॥८॥

दोहा—यथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन, भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

चौपाई—गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन ॥१॥
तेहि करि विमल विवेक विलोचन। वरणौं रामचरित भवमोचन ॥२॥

इति मानस रामायणे।

गायत्रीं प्रणमामि वेदवपुषामोङ्काररूपाम्पराम, सावित्री प्रतिपादितामघहराम्पद्मासने संस्थिताम् ॥ नानानूपूरभूषिताङ्घ्रियुगलां लाक्षारसैरञ्जिताम् योगाङ्गैः समुपासितामणुतराम्बिप्रस्य मोक्षप्रदाम् ॥ २ ॥

भाष्यम् ॥

आर्य्याणामार्य्येन शिवेन गुरुपरम्परया गायत्रीमन्त्रेण दीक्षितानाम् ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यानाम्, द्विजातीनाम्(१)वा। यद्वा,

---

(१) आर्य्याणां द्विजातीनामिति ॥ महाकुल कलीनार्य्यं सभ्य सज्जन साधवः ॥ इत्यमरः ।२।१।६०॥ अत्र आर्य्यशब्देन श्रेष्ठकुलोत्पन्नं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विज मिति गृह्यते ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ तां मे सहस्राक्षो देवी दक्षिणे हस्त आदधत् ॥ तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्चशूद्र उतार्य्यः ॥अथर्ववेद संहितायाम् का० ३। अ० १। सूत्र २०। मं० ४॥ पुनस्तत्रैव ॥उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ॥तेनाऽहं सर्वंपश्याम्युत शूद्रमुतार्य्यम् ॥ का० ४। अ० ४। सू० २०। मं० ४॥ पुनस्तत्रैव ॥ प्रियंमादर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च ॥ यस्मै च कामयामहे सर्वंमस्मै च विपश्यते ॥ का० २१। अ० ४। सू० ३२। मं० ८॥ पुनः कात्यायन श्रौतसूत्रे ॥ शूद्रार्य्यौ चर्म्मणि परिमण्डले व्यायच्छेते ॥ १३।३।७॥ तत्र भाष्यम् ॥ शूद्रश्चतुर्थो वर्णः आर्य्यस्त्रैवर्णिकः ॥ पुनर्मनुस्मृतौ ॥ अनार्य्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया । ब्राह्मण्यमप्यनार्य्यायात् तु श्रेयस्त्वं कचिद्भवेत् ॥ जातो नार्य्यमनार्य्याया मार्य्यादार्य्योभवेद्गुणैः ॥ जातोऽप्यनार्य्यादार्य्यायामनार्य्य इति निश्चयः ॥ सुबीजं चैव सुक्षेत्रं जातं सम्पद्यते यथा ॥ तथार्य्याद् आर्य्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥ अनार्य्यमार्य्यकर्म्माणामार्य्यंचानार्य्यकर्मिणम् ॥ सम्प्रधार्य्याब्रवीद्धातानसमौ नाऽसमाविति ॥ अ०

आर्य्याणामार्य्येंन शिवेनोपदिष्टो यो वैदिकसम्प्रदायः सदुपदेशस्तेन शिक्षितानामार्य्यसाम्प्रदायिकानां देवानां द्विजातीनां वा, गायत्र्येव इष्टदेवतेति [यद्गायत्र्युपक्रम्यातिष्ठत्तस्मादेतां गायत्रीतीष्टमाहुः ॥ इति कृष्णयजुर्वेदसंहितायाम् २।४।३।२] तस्मात्कारणादस्माकमार्य्याणांनित्यंप्रतिसन्ध्याकालेऽन्यान् सर्वान्देवान् परित्यज्य सन्ध्याख्यगायत्रीदेवताया उपासनैव वेदेनोपदिष्टा ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ अहरहः सन्ध्यामुपासी तेति श्रुतिः ॥ पुनर्देवी भागवते एकादशस्कन्धे ॥ यासन्ध्या सैव गायत्री सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ भक्त्या तां ब्राह्मणो नित्यं पूजयेच्चनमेत्तथा अध्या० १७।१०॥ पुनस्तत्रैव ॥ ब्रह्मादयोऽपि सध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च ॥ अध्या० १६।१६ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ विष्णोरुपासना नित्या वेदेनोक्ता न कुत्रचित् ॥ न विष्णोर्दीक्षा नित्याऽस्ति शिवस्याऽ [महेशस्य] पि तथैव च ॥ गायत्र्युपासना नित्या सर्व वेदैः समीरिताः ॥ यथा विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्येति सर्वथा ॥ अध्या ८।८८+८९ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणः ॥ शिवो [महेशो] पास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा ॥ अध्या० ८।९२॥ पुनर्मनुस्मृतौ ॥ न तिष्ठति तुयः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ सशूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ अध्या० २।१०३ ॥ तेन (गायत्रीम्प्रणमामि) स्वगुरुस्वरूपं गायत्रीं साष्टाङ्गं नमस्करोमि ॥ यद्वा, गायन्त-

---

१०।६६ + ७५॥ तत्र भाष्यम् ॥ यथाऽनार्य्यायां शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो उत्कृष्टो भवति ॥ पुनः श्लोके ७३॥ अनार्य्यः शूद्रः आर्य्यं कर्म्मं द्विजाति शुश्रूषातिरतः पाकयज्ञयाजो च देवद्विजनमस्कारपरः । आर्य्यो ब्राह्मणादिः सोऽनार्य्यकर्म्मा प्रतिसिद्धाचरणे विहित कर्म्मत्यागी इति मेधातिथिर्मनुभाष्ये ॥ पुनस्तत्रैव कुल्लूक भट्टः ॥ अनार्य्यमिति । शूद्रं जाति कर्म्मकारिणं द्विजातिश्च शूद्रकर्म्मं कारिणमिति ॥ तेनार्य्यशब्देन द्विजमिति सिद्धम् ॥

त्रायत इति गायत्री। यद्वा, प्राणावैगयास्तान्प्राणान्त्रायत इति गायत्री ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ साहैषागयास्तंत्रे। प्राणावैगयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गयास्तत्रेतस्माद्गायत्रीनाम् ॥ इति शतपथ ब्रा० १४।८।१५।७ ॥ पुनर्गायत्रीतन्त्रे ॥ मूलादिब्रह्मरंध्रान्तं गीयते मननाद्यतः ॥ मननात् त्राति षट्चक्रं गायत्री तेन कीर्तिता ॥ इति प्रथम ब्राह्मणपटले पुनर्भरद्वाजस्मृतौ ॥ दुष्प्रतिग्रहदुर्भक्ष्यरूपां होम्योऽनिशं द्विजम् ॥ गायन्त त्रायते यस्माद्गायत्रीति स्मृता ततः ॥ पुनस्तत्रैव ॥ प्राणा गया इति प्रोक्तास्त्रायते तानथापि वा ॥ गायत्रीति भवेन्नामकेवलं त्रायतेति वा ॥ तेन सन्ध्याकाले उपास्यदेवतां सन्ध्याभिधां(१)शिवस्य साकारास्वरूपां स्वगुरुं गायत्रीं प्रणामि नमस्करोमीति भावः ॥ कथम्भूतां गायत्रीम्? (वेदवपुषाम्) वेदः परमात्मा शिवः ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदोभूयाः ॥ इति शुक्लयजुर्वेदसंहितायाम् ॥ अध्या० १९।७८ ॥ तत्र महीधरभाष्यम् ॥ हे देव द्योतनात्मकं [प्रकाशस्वरूप वेद [शिव] हे वेद येन त्वं देवेभ्यः। षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। देवानां वेदोऽभवः ज्ञापकोभूः तेन कारणेन मह्यं ममवेदोभूयाः ॥ पुनस्तत्रैव ॥ ऋचो नामासियजुँ नामासि सामानिनामासि ॥ अध्या० १८।६७ ॥ पुनर्वाराहोपनिषदि ॥ शिवो गुरु शिवो वेद शिवो देवश्शिवः प्रभुः ॥ अध्या० ३।३१ ॥ पुनः कूर्म्मपुराणे ऋषींप्रति शिववाक्यम् ॥ आत्मायं केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः ॥ अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ॥ सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः समहेश्वरः ॥ स कालोऽत्र तदव्यक्तं स च वेद इति श्रुतिः ॥ अध्या० २।४+५ ॥ पुनः राधातन्त्रे ॥

(१) सन्ध्याभिधामिति ॥ कस्माद् गायत्री सन्ध्येत्याह ॥ वर्णानां चिन्तनं ध्यानं सम्यक् पापप्रणाशनम् ॥ त्रिसन्ध्यं क्रियते यस्मात् तस्मात्सन्ध्येति कथ्यते ॥ इति गायत्री तन्त्रे प्रथम ब्राह्मणपटले ॥

परब्रह्मणि वेदे च भेदो नास्ति कदाचन॥ यो वेदः स परब्रह्मतदेव-वेदरूपधृक्॥ वेदे ब्रह्मणि चैकत्वं पूर्णं ब्रह्म मिदं स्मृतम्॥ निरीहो निश्चलो वेदः पूर्णं ब्रह्म सनातनः॥ वेदस्तु प्रकृतिर्माया ब्रह्मणः कारणंपरम्॥ पट० १६ पुनर्बृहन्नीलतन्त्रे। वेदोब्रह्मेति साक्षाद्वै जानीह नग नन्दिनि॥ स्वयं प्रवर्तते वेदस्तत् कर्त्ता नास्ति सुन्दरि॥ स्वयंभुर्वेशो भगवान् वेदोगीतस्त्वयापुरा॥ शिवाद्या [रुद्राद्या] ऋषिपर्यन्ताः स्मर्तारो न कारकः॥ प्रकाशका भवन्त्वेते कृष्णाद्या स्त्रिदिवौकसः॥ पट०५॥ तेन वेदः शिव इति सिद्धम्॥ तस्य वेदाख्यस्य शिवस्य साकारस्वरूपा शक्ति र्गायत्री सा वेदवपुषा वेदस्वरूपा तेन तां वेदस्वरूपाम्॥ तत्र प्रमाणम्॥ अशेष वेदात्मक [वेदस्वरूपा] मेव माद्यं स्वतेजसा पूरित लोक भेदम्॥ त्रिकाल हेतुं रवि मण्डल स्थम्०॥ इति कूर्म्म पुराणे देवीं प्रति हिमवान्वाक्यम्॥ अध्या० १२।२३३॥ पुनस्तत्रैव हिमवान्प्रति देवी वाक्यम्॥ नान्यतो जायते धर्म्मो वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ॥ तस्मान्मुमुक्षुर्मद्रूपं सर्वदा वेद माश्रयेत्॥ ममैवेषा परा शक्ति र्वेद संज्ञा पुरातनी॥ ऋग्यजुः साम रूपेण सर्गादौ प्रवर्त्तते॥ अध्या०१२।२५५ २५७॥ २ पुनस्तत्रैव॥ ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया॥ अनादि निधाना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा॥ आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ अतोऽन्यानि तु शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानि च॥ अध्या० २।२८+२९॥ पुनर्देवी भागवते देवीं प्रति ब्रह्म वाक्यम्॥ गायत्र्यसिप्रथम वेदकला [वेदः शिवस्तस्य कला शरीरम्] त्वमेव॥ स्कं० २। अ० ४।४१॥ पुनस्तत्रैव सप्तमस्कन्धे भगवतीं प्रति मनोर्वाक्यम्॥ वेदमूर्ति (१) र्जगन्माता कारण स्थान

---

(१) वेदमूर्तिरिति॥ वेदस्वरूपा गायत्र्या मूर्तिः पञ्चवक्त्रा दशभुजा। तस्या गुण कर्म्मानुसारेण उपासनाकाल भेदेनबान्नीणि रूपाणि बभूवुः, यथा॥

रूपिणी ॥ वेदत्रय प्रमाणज्ञे सर्वदेव नुते शिवे ॥अ० १।२५॥ कथम्भूतां वेदवपुषां गायत्रीम् ? (ओङ्कार रूपाम्) ओमिति ब्रह्म। तैत्तिरीयोपनिषदि ॥ अनु० ८।१ ॥ गायत्री ब्रह्म गायत्री ब्रह्मवर्चसी ॥ इतिशतपथ ब्राह्मणे ॥ ४।?।१ १४ ॥ पुनः कृष्ण यजुर्वेद संहितायाम् ॥ ब्रह्म गायत्रीति ॥ ८।३।१ ७ ॥ तेन ब्रह्म स्वरूपाम् ॥ यद्वात्माब्रह्मतेनात्मस्वरूपाम् ॥ यद्वा, ओङ्कारस्याकारोकार मकार मात्रा त्रिभिर्ऋग्ययु साम स्वरूपाम् (१ ॥ यद्वा ओङ्कारास्य

---

(१) ऋग्यजु साम स्वरूपामिति ॥ त्रयो वेदास्तस्यैतद्रूपं क्रियत, तेन त्रयेन वेदेन पुनर्यंशमारमत ॥ श० ब्रा० ५।५।५।१० ॥ पुनः स्कन्दपुराणे ब्रह्मखंडे धर्म्मारण्य माहात्मे ॥ ऋक स्वरूपाममयदामच्चमालावलंबिनीम् । कश्यपर्षि समायुक्तां यजुर्वेद स्वरूपिणीम् ॥ सामवेदस्वरूपांच वसिष्ठर्षि समायुताम् ॥ इति सन्ध्योपासनप्रकरणे ॥ अध्याय ३५।३३ + ६३॥ अथ वेद स्वरूपाणां ध्यानमाह ॥ तत्र या गायत्री स्वरूपा सैव ऋग्वेदस्वरूपा तस्या ध्यानम् ॥ ब्रह्माणी चतुराननाऽक्षवलथा कुम्भं करैः स्रुकस्रुवौ बिभ्राणात्वरुणेन्दु कान्ति वदना ऋग्रूपिणी बालिका ॥ हंसारोहण केलि खणखणमणे बिम्बार्चिता भूषिता गायत्री परिभाविता भवतु नः सम्पत्समृध्ये सदा ॥१॥ या सावित्री सा यजुर्वेद स्वरूपा तस्या ध्यानमाह ॥ रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्र चरमाम्बरा खट्वांगात्रिशिखाच्च सूत्र वलयाऽभीति श्रियैचास्तुनः ॥ विद्युद्दाम जटा कलाप विलसद्बालेन्दु मौलिर्मुदा सावित्री वृष वाहना सित तनुर्ध्येया यजू रूपिणी ॥२॥ या सरस्वती सा साम वेद स्वरूपा तस्या ध्यानमाह ॥ ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरा लंकृता स्यामा साम तनुर्जरोपरि लसद्गात्रोर्चिता वैष्णवी तार्क्ष्यस्थो मणि नूपुरांगदलसद्ग्रैवेय भूषोज्ज्वला हस्तालंकृत शंख चक्र सुगदा पद्माश्रिये चास्तुनः ॥ एवं ध्यात्वा जपेत्तिष्ठन्प्रातमं ध्यान्हके तथा ॥ सायंकाले समासीने भक्त्या तद्गत मानसः॥ इति श्री नारदीय पुराणे सन्ध्योपासन प्रकरणे ॥ अ० २७ ॥ अथ वेदानाम् ध्यानस्यावश्यकतामाह ॥ गायत्रीच तथा सन्ध्या वेद ध्यानं तथा मनुम् ॥ कलिकाले महाराज ब्राह्मणेषु प्रशस्यते ॥ इति गायत्री तन्त्रे तृतीय ब्राह्मण पटले ॥

मात्रा त्रिभि गायत्री (१) सावित्री सरस्वती स्वरूपाम् ॥ यद्वा वेदानां प्रणवोबीजस्तेन बीजस्वरूपाम् (२) ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (पराम्) श्रेष्ठाम् ॥ सैषा परा शक्तिः ॥ इति वह्वृचोपनिषदि॥ पुनः कभम्भूतां गायत्रींम् ? (सावित्री प्रतिपादिताम्) सावित्री, तत्सवितुरित्यादि चतुर्विंशाक्षरो सावित्री मन्त्रो यो द्विजातीनामुपनयनकाले, वेदारम्भसंस्कार निमित्त, परम्परया गुरुभि (३)रुपदिश्यते, तेन मन्त्रेण साविन्याख्य देवता प्रति

---

(१) गायत्री सावित्र्यादि ध्यानम् मार्य्यसम्प्रदाय प्रदर्शक गायत्री भाष्ये दृष्टव्यम् ॥

(२) बीजस्वरूपामिति ।। बीजस्वरूपेण गायत्र्या ध्यानमाह ।। सर्वेषाञ्चैव बीजानामेवंध्यानं समाचरेत् ॥ शुक्ल विद्युत्समा कारां नयनत्रय धारिणीम् ।। कराद्यविशिखैर्युक्तां चतुर्बाहु समन्विताम् ।। त्रिभङ्ग ललिताकारां चारुचूडा विराजिताम् ॥ पुण्डरीकोपरिष्टाच राकाचन्द्र मुखोम्पराम् ।। नाना गन्ध प्रलिप्ताङ्गी सुगन्ध्य माल्य संस्कृताम् ।। नाना भरण लिप्ताङ्गीं मेधांशुकपरिष्कृताम् ।। वीणा वाद्य विनोदेन वल्लसन्तीं जगत्त्रयम्। आर्यां ब्रह्ममयीं देवींमष्टबीज स्वरूपिणीम् ।। ब्रह्माद्या देवता यस्याश्चपरो पतिता भुवि ।। भजेहं मातृकां देवीं वेदमाता सनातनीम् ।। इति कामधेनु. तन्त्रे पटले १२ ।।

(३) परम्परया गुरुभिरिति ।। परम गुरुः शिवस्तेन सृष्ट्यादौ गायत्री मंत्रं विष्णुम्प्रत्युपदिष्ट इति स्पष्टी क्रियते ॥ तत्र पद्म पुराणे पञ्चम खण्डे विष्णुं प्रति शिववाक्यम् ॥ तव ज्ञानं प्रदास्यामि तुभ्य स्नानंच वारुणम् ।। भस्म स्नानं ततः पश्चात्ततो ज्ञानं वदाम्यहम् ।। अ० १०५।२०० + २०१ ।। पुनस्तत्रैव ॥ भस्म स्नानेन संशुद्धो वेत्स्यसे परमं शुभम् ।। दीक्षितस्य हि तच्छस्तं तद्दचा करवाम्यहम् ॥ अ० १०६।२१७ ।। पुनः शिव पुराणे ज्ञान संहितायाम् शिवम्प्रति विष्णु वाक्यम् ।। देव देव नमस्तुभ्यं देहि तत्वं नमोस्तुते ।। ध्येयं सेव्यं तथा पूज्यं वक्तुमर्हसि सुव्रत ।। यत्कृत्वा सर्वं सामर्थ्यं भविष्यति न संशयः ।। इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ नादात्मकं शिवम् ।। प्रणवात्मकं परंतत्वं लब्धवान्परमात्मनः ।। हरिस्तत्र परंतत्वं ज्ञात्वा रूपमपश्यत ।। तदु--

पादिताम् निरूपिताम् । यद्वा, सवितुर्मण्डले भर्गात्मिका यद्
गायत्र्याः स्वरूपम् सा सावित्री शब्देन प्रतिपादिताम् निरूपि-
ताम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? ॥ (अघहराम्) अघस्पापं
दुःखम्वा हरति नाशयतीति दुःखहराम् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ अष्टा-
क्षरावै गायत्री गायत्र्या वै देवाः पाप्मानं शमलमपाघ्नत गायत्र्यै
वास्य तत्पापमशमलमप हन्ति ॥ इतिशतपथ ब्रा० ॥ ।२।१७॥ पुनः
कथम्भूतां गायत्रींम् ? (पद्मासनेसंस्थिताम्) पद्मासने कमलासने
संस्थितामुप विष्टाम् । यद्वा, हृद्यष्ट दलकमले सूपविष्टाम् ॥ पुनः कथ
म्भूतां गायत्रीम् ? ॥ (नाना नूपुर भूषिताङ्घ्रि युगलाम्) नाना बहु
नूपराणि पादाङ्गदानि तै भूषितं शोभितं अङ्घ्रि युगल श्चरणद्वयम्
यस्यास्ताम् ॥ कथम्भूतां अङ्घ्रियुगलाम् ? ॥ (लाक्षा रसै
रञ्जिताम्) लाक्षा राक्षा तस्यारसेन रञ्जितां चिन्हिताम् ॥
पुनः कथम्भूतां गायत्रींम् ? (योगाङ्गैः समुपासिताम्) योगाङ्गैः
प्राणायामै रुपसितां सेविताम् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ एवं विशिष्ट
गायत्री प्राणायामै रुपास्येति भगवता शङ्कराचार्य्यैणोक्तम् गायत्री
मंत्र भाष्ये ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रींम् ? (अणु तराम्) अति
सूक्ष्मां कुण्डलिनी (१) स्वरूपामिति भावः ॥ पुनः कथम्भूतां गाय-

---

पार्थं प्रवक्ष्यामि मंत्रतत्त्वं शुभान्वधः ॥ प्रणम्य भगवान् विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः ॥
ओंकार प्रभवं मंत्रं कलापञ्चक संयुतम् ॥ ॐतत्व मसीत्युक्तं महावाक्यं हरस्य च ॥
शुद्ध स्फटिक संकाशं मंत्ररूपमनुत्तमम् ॥ [मंत्र रूपमिति गायत्र्याः स्वरूपम्] मेधाकर-
मभूद्भूयः सर्वकामार्थ साधकम् ॥ पुनर्मन्त्रं तथान्यच्च गायत्री लक्षणं महत् ॥ चतु-
र्विंशति वर्णाढ्यं [तत्सवितु०] चतुर्वर्गं फलप्रदम् ॥ पुनर्मृत्युंजयं मंत्रं पञ्चाक्षरमतः परम् ॥
चिन्तामणिं तथा मंत्रं दक्षिणामूर्तिं संज्ञितम् ॥ पंच मंत्रं तथा लब्ध्वा जगाम भगवान्
हरिः ॥ अध्याय ३।४३।५१ ॥

(१) कुण्डलिनी स्वरूपामिति ॥

त्रीम्? (विप्रस्य मोक्षप्रदाम्) विप्रस्य द्विजस्य क्रमेण सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, निर्वाण मोक्ष प्रदाम् कैवल्य दात्रीम् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ सर्वात्मना हि या देवो सर्व भूतेषु संस्थिता ॥ गायत्री मोक्ष हेतुर्वै मोक्षस्थानम लक्षणमिति याज्ञवल्क्य वाक्यम् ॥ २ ॥ पुनर्देवी भागवते सप्तम स्कन्धेनारदं प्रति नारायण वाक्यम् ॥ परब्रह्म स्वरूपा च निर्वाण पद दायिनी ॥ अध्य० १।४२॥२॥

भाष्य का हिन्दी में संक्षेपानुवाद ।

आर्य्यों अर्थात् जिन मनुष्यों को शिवरूपी आदि गुरू से लेकर अब तक गुरू परम्परा द्वारा गायत्री मंत्र की दीक्षा उपनयन के समय होती चली आती है, तिससे ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवताओं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों द्विजातियों की, अथवा आर्य्यों अर्थात् जो सृष्टि के आदि से अभी तक आदि गुरू आर्य्यसंज्ञक शिव के वैदिक सदुपदेशों अर्थात् सम्प्रदाय करिकै सुशिक्षित, आर्य्य सम्प्रदायानुयायियों देवादिकों और द्विजातियों की उपास्य इष्ट देवता केवल गायत्री ही है। वेदादिक सत्शास्त्रों में सन्ध्या स्वरूपा गायत्री की उपासना ही और तत्सवितुरिति० वैदिक गायत्री मंत्र का जपना ही द्विजाति आर्य्यों के लिये अत्यन्त श्रेयस्कर बतलाया गया है। अन्य, विष्णु महेशादि देवतौं की उपासना तथा उनके मन्त्रों की दीक्षा अनित्य बताई गयी है, क्योंकि गायत्री की उपासना और गायत्री मंत्र का जप ब्रह्मा विष्णु महेशादि भी करते हैं; और यही कारण है कि हम द्विज आर्य्य लोगों को भी गुरू परम्परा से गायत्री की उपासना और गायत्री मंत्र की दीक्षा होने पर उसके जपने का सम्बन्ध तथा उसकी आवश्यकता अभी तक चली आती है। आर्य्यत्व तथा द्विजत्व की प्राप्ति का मूल कारण केवल गायत्री की उपासना और गायत्री मंत्र की दीक्षा होने पर उसका जपना है। वैदिक शास्त्रों की विधि का

सिद्धान्त है कि ध्यान की जड़ श्रीगुरू स्वरूपा गायत्री की मूर्त्ति, पूजा की जड़ श्रीगुरू की प्रसन्नता है और मन्त्र की जड़ श्रीगुरू स्वरूपा गायत्री का वाक्य अर्थात् वेद है। इससे नित्यप्रति सब कार्य्यों से प्रथम, अथवा अन्य माङ्गलिक कार्य्यों के प्रारम्भ में सबसे पहिले गुरू का ध्यान और पूजन करना आर्य्यों का परम धर्म्म बतलाया गया है । इसी कारण से पूर्वोक्त भाव को गृहण कर श्री गायत्री स्तोत्र का प्रारम्भ होता है ॥

[गायत्रीम्प्रणमामि] स्तुति करनेवाले तथा गान करने वाली की जो रक्षा करै सो गायत्री संज्ञक है। अथवा, प्राण शब्द गय वाची है सो प्राणों की जो रक्षा करै सो गायत्री संज्ञक है। इससे सन्ध्याकाल में उपासना करने योग्य जो सन्ध्या नामक देवता जगद्गुरू शिव का साकार स्वरूप गायत्री है उसको साष्टाङ्ग नमस्कार करता हूँ, यथा ॐगायत्र्यैनमः, ॐभर्गात्मिकायैनमः, ॐसावित्र्यैनमः, ॐसरस्वत्यैनमः ॥ कैसी गायत्री को नमस्कार करता हूँ ? [वेदवपुपाम्] वेद जो परमात्मा शिव हैं तिनके साकार स्वरूप वेदस्वरूपा को। कैसी वेदस्वरूपा गायत्रीको ? [ओंकार रूपाम्] ओम् नाम, ब्रह्म का है इससे ब्रह्मस्वरूपिणी को। अथवा, ओम् नाम आत्मा का है तिससे आत्मस्वरूपिणी को। अथवा वेदों का बीज ओम् है तिससे बीजस्वरूपिणी को। अथवा, ओंकार में अकार उकार और मकार तीन मात्रा हैं सो यह तीनों गायत्री, सावित्री तथा सरस्वती संज्ञक हैं इससे गायत्री, सावित्री सरस्वती स्वरूपिणी को। अथवा पूर्वोक्त मात्रायें ऋग्यजु और साम संज्ञक हैं इससे ऋग्यजु सामस्वरूपिणी को । कैसी ओङ्कारस्वरूपा गायत्री को ? [पराम्] श्रेष्ठ अथवा परा शक्ति को ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [सावित्री प्रतिपादिताम्] सावित्री, तत्सवितुरिति० चौबीस अक्षर वाला जो सावित्री [गायत्री] मंत्र है और वही मंत्र द्विजातियों को यज्ञोपवीत के समय वेदारम्भ संस्कार के लिये सृष्टि के आदि से अभी तक हम द्विजाति आर्य्य लोगों को गुरू परम्परा द्वारा उपदेश

किया जाता है और उसी मंत्र के अर्थ से हम लोगों को अपने उपासनीय सावित्री संज्ञक गायत्री स्वरूप की उपासना वतलाई जाती है इससे गायत्री, सावित्री कहलाने वाली को। अथवा, सवितुः सूर्य्य के मण्डल में जो भर्गात्मिका अर्थात् भर्ग नाम वाला श्रीगायत्री का तेज स्वरूप है, इससे गायत्री सावित्री नामवाली हुई सो सावित्री कहलानेवाली को॥ फिर कैसी गायत्री को? [अघहराम्] अघ जो पाप और दुःख हैं तिनको जो नाश करती है तिसको? फिर कैसी गायत्री को? [पद्मासने संस्थिताम्] जो कमलासन में बैठी है। अथवा, जो हृदय के अष्ट दल कमल में बैठी है॥ फिर कैसी गायत्री को? [नाना नूपुर भूपिताङ्घ्रि-युगलाम्] वहुतसी घुंघुरूवाली पायजेब इत्यादि पैरों के आभूपणों से सुशोभित हैं दोनों चरण जिसके तिसको॥ वे दोनो चरण कैसे हैं? [लाक्षारसैरञ्जिताम्] लाक्षारस जो महाउर है सो उस करिकै चिन्हित हैं॥ फिर कैसी गायत्री को? [योगाङ्गैः समुपासिताम्] योग का अंग जो प्राणायाम है सो प्राणायाम द्वारा जो उपासना की जाती है तिसको॥ फिर कैसी गायत्री को? [अणुतराम्] जो अत्यन्त सूक्ष्म है अर्थात् कुण्डलिनी स्वरूपा है तिसको॥ फिर कैसी गायत्री को? [विप्रस्य मोक्षप्रदाम्] द्विज को क्रम से सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य और निर्वाण मोक्ष देनेवाली को॥ २॥

रत्न स्वर्णा विभासि वस्त्र लासतां शोभाऽन्वितां भूषिता, मञ्जीरादि कटिप्रदेश लसितां लावराय शोभाऽवृताम्॥ फुल्लां दिव्यउरस्थलेसु दधती म्मालां हृदुल्लासिनीं, मुक्ता विद्रम हेम नील मणिभिर्युक्तां प्रभा वर्धिनीम्॥ ३॥

भाष्यम् ॥

कथम्भूतां गायत्रीम् ? (रत्न स्वर्ण विभासि वस्त्र लसिताम्) रत्नैः स्वर्णेन च विभासितं शोभितं यद्वस्त्रमन्तरीयं तेन लसितां शोभिताम्। कथम्भूतां वस्त्रलसिताम्? (शोभाऽन्विताम्भूषिताम्) शोभया अन्वितां युक्तां, तया भूषिताम लंकृताम् ॥ पुनःकथम्भूतां गायत्रीम् ? (मञ्जीरादि कटि प्रदेश लसिताम्) कटिप्रदेशे मञ्जीरादिभिर्लसितां शोभिताम् ॥ कथम्भूतां कटि प्रदेशलसिताम् ? (लावण्य शोभाऽवृताम्) लावण्यस्य शोभाया तयाऽवृतामाच्छादिताम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (दिव्य उरस्थलेसुमालां दधतीम्) प्रकाशमान वक्षथले स्रजं सुष्ठु धारयन्तीम् ॥ कथम्भूतां मालाम् ? (फुल्लाम) विकसिताम् ॥ पुनः कथम्भूतां मालाम् ? (हृदुल्लासिनीम्) मनोमोदिनीम् ॥ पुनः कथम्भूतांमालाम् ? (मुक्ता विद्रुम हेम नील मणिभिर्युक्ताम्) मुक्ता विद्रुम हेम नीलमणिभिर्युक्तां ग्रथिताम् ॥ कथम्भूतां मणिभिर्युक्ताम् ? (प्रभावर्द्धिनीम्) प्रभा दीप्तिस्तां वर्द्धयति तच्छीलाम् ॥ ३ ॥

भाष्य का हिन्दी में संक्षेपानुवाद ।

फिर कैसी गायत्री को प्रणाम० ? [रत्नस्वर्णविभासिवस्त्रलसिताम्] रत्नों और सोने के तारोंसे बिना हुआ जो वस्त्र अर्थात् साड़ी, तिसको पहिरने से सुशोभित है शरीर जिसका तिसको ॥ कैसी शोभित साड़ी को ? [शोभाऽन्वितां भूपिताम्] शोभा से युक्त तिससे शोभायमान को ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [मञ्जीरादिकटिप्रदेशलसिताम्] जिसका कटि प्रदेश अर्थात् कंरिहांव मञ्जीरादि अर्थात् करधनी और क्षुद्र घंटिका इत्यादि कटि भूषणों से सुशोभित है तिसको ॥ कैसा वह कटि प्रदेश है ? [लावण्यशोभाऽवृताम्] लावण्य और सुन्दरता से आच्छादित है ॥ फिर कैसी गायत्री

को ? [दिव्य उरस्थले सुमालांदधतीम्] प्रकाश मान उरस्थल में जो सुन्दर माला को धारण किये है तिसको ॥ कैसी माला को धारण किये है ? [फुल्लाम्] फूली हुई को ॥ फिर कैसी माला को ? [हृदुल्लासिनीम्] मन को आनन्द देनेवाली को ॥ फिर कैसी माला को ? [मुक्ताविद्रुमहेमनीलमणिभिर्युक्ताम्] मुक्ता जो मोती हैं, विद्रुम हेम, नील इत्यादि नामवाली जो मणि हैं तिन से गुंथी हुई हैं जिसमें तिसको ॥ कैसे मुक्तादिकों से गुंथी हुई माला को ? [प्रभावर्द्धनीम्] प्रभा जो दीप्ति है तिसको बढ़ाने वाली को ॥ ३ ॥

मुक्ताभिः समलङ्कृतामतिविभां कण्ठस्रजं बिभ्रतीं शुभ्रं चक्र गदा कपालमभयं फुल्लाम्बुजं दक्षिणे ॥ वामे शङ्ख कशा वराङ्कुश कजं सन्धारयन्तीं करे, सौवर्णाऽङ्गुलिकादि रत्न लसिते पञ्चाननाम्मातरम् ॥४॥

भाष्यम् ॥

पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (कण्ठस्रजं बिभ्रतीम्) कण्ठे गले स्रजं कण्ठभूषां बिभ्रतीं धारयन्तीम् ॥ कथम्भूतां कण्ठस्रजम् ? (मुक्ताभिः समलङ्कृताम्) मुक्ताभिः मौक्तिकैः समलङ्कृतां संयोजिताम् ॥ कथम्भूतां समलङ्कृताम् ? (अतिविभाम्) अत्यन्तप्रकाशकर्त्रीम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (शुभ्रं चक्र गदा कपालमभयं फुल्लाम्बुजं दक्षिणे) दक्षिणहस्ते चक्रं गदा, शुभ्रं कपालं, खर्परं, अभयमुद्रां, फुल्लाम्विकसितमम्बुजं कमलं सन्धारयन्तीं सम्यक् प्रकारेण धारयन्तीम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (वामे शङ्ख कशा वराङ्कुश कजं सन्धारयन्तीं करे) वामहस्ते शङ्खं

कशां, वरमुद्रां, अङ्कुशं कजं पद्मं सन्धारयन्तीम् ॥ कथम्भूते करे ? (सौवर्णाङ्गुलिकादि रत्न लसिते) सुवर्णेन निर्म्मितानि सौवर्णानि, यानि अंगुलिकानि अङ्गुलिभूषणानि उर्मिकाख्यानि, तदादिषु यानि रत्नानि मणयस्तैर्जटितानि लसिते शोभिते। पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (पञ्चाननाम्) पञ्चाननान्यास्यानि यस्या सा पञ्चानना ताम्पञ्चाननाम्पञ्चवक्त्राम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (मातरम्) जगज्जननीम् ॥ ४ ॥

भाष्य का हिन्दी भाषा में संक्षेप अनुवाद।

फिर कैसी गायत्री को प्रणा० ? [कण्ठस्रजंबिभ्रतीम्] गले में जो कण्ठभूषण, अर्थात् जिसको कण्ठसिरी कहते हैं उसको धारण किये हैं तिसको ॥ कैसी कण्ठसिरी को ? [मुक्ताभिः समलङ्कृताम्] मोतियों से जो गुथी हुई है तिसको ॥ कैसे मोतियों से गुंथी हुई को ? [अतिविभाम्] अत्यन्त प्रकाश करने वालों से ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [शुभ्रं चक्र गदा कपालमभयं फुल्लाम्बुजंदक्षिणे] जो दक्षिण हाथों में चक्र, गदा, सफेद खप्पर, अभयमुद्रा, और फूले हुए कमल को धारण किये हैं तिसको ॥ फिर कैसी गायत्री को प्रणाम० ? [वामेशङ्खकशावराङ्कुशकजंसन्धारयन्तीकरे] जो वांये हाथ में शंख, चाबुक, वरमुद्रा, अङ्कुश और कमल को सम्यक् प्रकार से धारण किये हैं तिसको ॥ कैसे हाथों में ? [सौवर्णाङ्गुलिकादिरत्नलसिते] सुवर्ण सेवनी और रत्नों से जड़ी हुई जो मुद्रिकादि को लेकर जो और आङ्गुलिक भूषण हैं तिन्ह भूषणों से जो सुशोभित हैं तिनमें ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [पञ्चाननाम्] पांच मुख हों जिसके सोपञ्चानना कहलाती है इससे पांच मुखवाली को ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [मातरम्] जगजननी को ॥ ४ ॥

कर्णोकुण्डलमञ्जनञ्च नयने भ्रूभङ्ग लीलायुताम् भाले विन्दुमती ञ्च कुङ्कुम धरां

नेत्रत्रयोद्भासिताम् ॥ भानो र्दीप्तिकरां स्वदिव्य मुकुटे चन्द्रेण शोभाऽन्विता मादित्यान्त कलेवरां सुललितां मन्दस्मिता मार्य्यकाम् ॥५॥

भाष्यम् ॥

कथम्भूतां गायत्रीम् ? (कर्णे कुण्डलम्) श्रवणे कुण्डलं कर्णभूषणं यस्यास्ताम् (च) पुनः (नयने अञ्जनम्) नेत्रयोः सौवीरं यस्यास्ताम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (भ्रूभङ्गलीलायुताम्) भ्रूभङ्गो भ्रवोरारोहणावरोहणस्य विक्षेपस्य यालोला केलिस्तया युक्ताम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? भाले विन्दुमतीम्) मस्तके विन्दुमतीम्विदुं धारयन्तीम् (च) पुनः (कुङ्कुमधराम्) मस्तके कुङ्कुमं कश्मीरजं धारयन्तीम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (नेत्रत्रयोद्भासिताम्) नेत्रत्रयं त्रीणि नेत्राणि तैरुद्भासितां शोभिताम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (भानोर्दीप्तिकराम्) भानोः सूर्य्यस्य मण्डले भर्गाख्य सावित्री स्वरूपेण स्थिता स्वप्रकाशेन सूर्य्यस्य दीप्तिकराम्प्रकाशकर्त्रीमितिभावः ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ गायत्र्यैव भर्गः॥ इतिगोपथ ब्राह्मणे पूर्वार्थे ॥५। १५॥ ब्रह्मगायत्री तद्यत्तद्ब्रह्मैव तद्यदेतन्मन्मण्डलंयतति ॥ शतपथब्राह्मणे ॥ ८।३।१।५।७ ॥ पुनः कृष्णयजुर्वेद संहितायाम् ॥ एष वै गायत्र्यो देवानां यत्सवितैष गायत्रियै लोको गृह्यते॥६।५।८।१॥ पुनर्ब्रह्मयामल तन्त्रे गायत्री मंत्र भाष्ये ॥ सवितुर्देवस्य दीप्ति क्रीडा युक्तस्य सूर्य्यस्य मण्डल मध्यवर्तिनी महाकाल्यादि दश महाविद्या संयुक्तस्य नारायणस्य परब्रह्मणः कुण्डलिनी गायत्री एव तेजः स्वरूपो भर्गः तम् भर्गं वयम् धीमहि ॥ पुनः शाक्तानन्दतरंगिण्याम् ॥ गायत्रीं भावयेद्देवीं [भावयेदुपासयेत्] सूर्य्या-

सनकृताश्रयाम् ॥ प्रातर्मध्याह्न सायान्हे ध्यानं कृत्वा जपेत्सुधीः ॥ पुनर्देवीभागवते द्वादश स्कन्धेगायत्री सहस्रनाम्नी ॥ भर्गात्मिका भीमवती भवबन्ध विमोचिनी ॥ अध्या० ६।१२१ ॥ पुनः रुद्रयामले पूर्वतन्त्रे पञ्चांग खण्डे गायत्री सहस्रनाम्नी ॥ ।भर्गात्मिका भद्रदायी भद्रकाली भयंकरी ॥ तेन भर्गाख्य गायत्रीति सिद्धम् ॥ पुनस्तैत्तिरीयब्राह्मणे ॥ कस्मात्सावित्री मन्वाह ?—सविता वै प्रसवानामीशे सवितृप्रसूता एवैनं तत्प्रणयन्ति तस्मात्सावित्री मन्वाह ॥१।५।३०॥ पुनर्भरद्वाजकृद्गायत्री मंत्रभाष्ये ॥ सवितृप्रकाश करणात्सावित्रीत्यभिधीयते ॥पुनर्ब्रह्मवैवर्त पुराणे प्रकृतिखंडे ॥ सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठात्रि (१) देवता ॥ सावित्री [प्रसवित्री] चाऽपिवेदानां सावित्री तेन कीर्त्तिता ॥ अध्या० २४।६८ पुनर्देवी भागवते नवम स्कन्धेऽपि ॥अ० ३८।६५॥ पुनर्भविष्य पुराणे ॥ सूर्य्यं मण्डल मध्यस्था सावित्री नाम देवता ॥ सर्वं सूर्य्यस्य जननी कन्या तन्मण्डस्य वै ॥ अध्या० ८।६३ ॥ तेन साविञ्येव सूर्य्यस्य प्रकाशकर्त्रीति सिद्धम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (स्व दिव्य—मुकुटे चन्द्रेण शोभाऽन्विताम्) स्वदिव्य प्रकाशमानमुकुटे मणिभिर्जटिता या चन्द्राकार रेखा तया रेखया शोभाऽन्वितां शोभाकान्तिस्तया अन्वितां युक्ताम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (आदिक्षान्त कलेवराम्) आदिक्षान्त अकारादिक्षकार पर्य्यन्तं येवर्णास्ते (२) सर्वे युवती शक्तिः स्वरूपाः

---

(१) मन्त्राधिष्ठात्रिदेवतेति ॥ मंत्र शब्देन गायत्री [तत्सवितुरिति] मंत्रेतिबोधव्यम् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ ऋषिः सदाशिवः प्रोक्त श्छन्दोत्रिष्टुबुदाहृतम् ॥ अधिष्ठात्री तु सावित्री मोक्षार्थं विनियोगिता ॥ इति महानिर्वाणतन्त्रे वेदारम्भ संस्कारे सावित्री मंत्र प्रदाने ॥ उल्लास ।६।२१४ ॥

(२) येवर्णास्ते सर्वे युवती स्वरूपा इति ॥ योग मार्गे भक्ति मार्गे मुक्ति मार्गे च सुन्दरि ॥ ध्यानमार्गे तु पूजायां जपमार्गे तथैवच ॥ एतास्तु युवती वर्णाः कार्य्यं

कलेवरं स्वरूपं यस्यास्ताम् ॥ कथम्भूतामादिक्षान्तकलेवराम् ? (सुललिताम्) सुष्ठ ललितां मनोहराम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? (मन्दस्मिताम्) मन्दं शनैः शनैः स्मितामीषत्हास्यकर्त्रीम् ॥ पुनः कथम्भूतां गायत्रीम् ? ॥ (आर्य्यकाम्) आर्य्यः शिवस्तेन शिवस्वरूपा मार्य्यकाम् । (१) यद्वा, दुर्गां पराशक्ति बुद्ध्यधिष्ठात्री (२)देवतामिति भावः ॥ ५ ॥

कारण रूपिणीति ॥ इति कामधेनु तन्त्रे ॥ पट० १२ ॥ पुनस्तत्रैव दशमपटले ॥ पञ्चाशन्मातृका यासा युवती परिगीयते ॥ युवती रहितं देवि कुतोविद्या कुतोमनुः ॥ निर्गुणं परमं ब्रह्मप्रधाना युवतीगणाः ॥ पुनस्तत्रैवगायत्री तन्त्रे प्रथम ब्राह्मण पटले ॥ वर्णानां चिन्तनं ध्यानं सम्यक् पाप प्रणाशनम् ॥ त्रिसन्ध्यं क्रियते यस्मात्तस्मात् सन्ध्येति कथ्यते ॥ तत्र वर्णानां ध्यानं निर्दिश्यते ॥ तथा च सर्व वर्णानां ध्यानं वक्ष्यामि संश्रृणु ॥ कोटिचन्द्रप्रतीकाशां पुण्डरीके परिस्थिताम् ॥ भ्रमद् भ्रमर लोलाभां नयन त्रय राजिताम् ॥ नाना शास्त्र प्रवक्त्रीश्च विद्याभ्यास मयींसदा ॥ नानावाद्य मयी देवीं श्वेतांशुक परिष्कृताम् ॥ शुक्लाभरण दीप्तांगीं शुक्लवस्त्रोत्तरीयिणीम् ॥ एवं ध्यात्वा जगद्धात्रीं मातृकां जगदम्बिकाम् ॥ प्रजपेद्दशधा मंत्रमेकधा च जपेत्तु यः ॥ सर्वं सिद्धि मवाप्नोति नात्र कार्य्यं विचारणः ॥ पुनर्गायत्रीं तन्त्रे प्रथम ब्राह्मण पटले ॥ पञ्चाशद्वर्णं संयुक्तं गायत्री निर्मितं वपुः ॥ आधार पद्म मध्यस्था विद्युत्पुञ्ज प्रदीपिका ॥ महापद्म [सहस्रारे] वनमयी महापाप विमोचनी ॥ महापुण्य मयी नित्या सच्चिदानंदरूपिणी ॥ पुनः राधातन्त्रे ॥ पञ्चाशदक्षरं देवि मूर्तिं विग्रहधारिणी ॥ श्यामांगो च तथा गौरी शुद्ध स्फटिक सन्निभा ॥ पट० ४ ॥ पुनः कंकालमालिनी तन्त्रे गुरुबीजं समुद्दिष्टं गुरुरित्यक्षरद्वयम् ॥ डाकिनी शाकिनी देवि लाकिनी काकिनी ततः ॥ शाकिनी हाकिनी संज्ञा सत्वरूप ततः प्रिये ॥ रजोरूपा तमोरूपा मातृका रूपिणीगुरु ॥ पट० ५ ॥

(१) आर्य्यकामिति ॥ भूयोऽहमस्मि सततं मयि भावनीयं त्वां स्वामिनीति मनसा ननु चिन्तयामि ॥ पञ्चावयो रविरता किल देवि भूयाद् व्याप्तिः सदैव जननी सुतयोरिवार्य्ये ॥ इति देवी भागवते तृतीये स्कन्धे भगवतीं प्रति विष्णु वाक्यम् ॥ अ० ४।३८॥

(२) बुद्ध्याधिष्ठात्रीति ॥ बुद्ध्याधिष्ठात्री या देवी सर्व शक्ति स्वरूपिणी ॥ सर्वं

भाष्य का हिन्दी भाषा में संक्षेप अनुवाद।

फिर कैसी गायत्री को प्रणा० ? [कर्णे कुण्डलम्] कानों में कर्णभूषण अर्थात् कर्णफूल जो पहिरे है [च] और [नयने अञ्जनम्] नेत्रों में अञ्जन तथा सुरमा लगाये है तिसको ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [भ्रूभङ्गलीलायुताम्] भौहों का जो चढ़ावना और उतारना है सोई है लीला तिस करिके युक्त वाली को ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [भाले विन्दुमतीम्] मस्तक में विन्दु अर्थात् वेदी को धारण करने वाली को [च] और [कुङ्कुमधराम्] केसर को धारण करने वाली को ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [नैत्रत्रयोद्भासिताम्] प्रति मुख में तीनि नेत्रौं से शोभायमान वाली को ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [भानोर्दीप्तिकराम्] सूर्य्यमण्डल में भर्गसंज्ञक सावित्री स्वरूप से स्थित होकर अपने प्रकाश से सूर्य्य को प्रकाशित करने वाली को ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [स्वदिव्यमुकुटे चन्द्रेण शोभाऽन्विताम्] जो अपने प्रकाशमान मुकुट में मणियों से जटित चन्द्राकार रेखा की शोभा से युक्त है तिसको ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [आदिक्षान्तकलेवराम्] अकार से लेकर क्षकार पर्य्यन्त जो वर्ण अक्षर हैं वे सब स्त्री स्वरूप अर्थात् शक्तिस्वरूप हैं सो वे वर्ण हैं शरीर जिसका तिसको ॥ कैसा है वह आदिक्षान्तरूपी कलेवर [सुललिताम्] सुन्दर मनोहर ॥ फिर कैसी गायत्री को ? [मन्दस्मिताम्]

ज्ञानात्मिका सर्वा सा दुर्गा दुर्गनाशिनी ॥ इति ब्रह्मवैवर्त पुराणे कृष्णखण्डे ॥ अ० ४०।६५ ॥ पुनरग्निपुराणे ॥ आर्य्या दुर्गा वेदगर्भा अम्बिका भद्रकाल्यपि ॥ भद्रा क्षेमा क्षेमकरी नैकबाहुर्नमामिताम् ॥ त्रिसन्ध्यंयः पठेन्नाम्नाम् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ अ० १२।११+१२ ॥ गायत्र्येव दुर्गा बभूवेति स्पष्टी क्रियते ॥ ततस्ताम् [गायत्रीम्] ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ॥ गायत्रीं तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मानुमंत्रितः ॥ इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीगायत्रिमीरितम् ॥ इति लिंगपुराणे ॥ अ० १४।१२+१३ ॥

धीरे धीरे मुसकराने अर्थात् हास्य करने वाली को ॥ फिर कैसी गायत्री को? [आर्य्यकाम्] आर्य्य नाम पर शिव का है इससे शिवस्वरूप वाली को। अथवा, आर्य्यांदुर्गास्वरूपधारण करने वाली को ॥५॥

ध्येया ब्रम्ह रमेश रुद्र गुरुभि र्भूपाक्षि धी हेतुभिः शश्वद्वैदिक(१)सम्प्रदाय कथने विद्वद्वराग्रे सदा ॥ सा पायान्निज सेवकान् सुत जनान् शाक्तान् प्रियान्वै द्विजान् भाले भस्म त्रिपुण्ड्र कान्ति लसितान् रुद्राक्ष माला धरान् ॥६॥

अन्वयः।

अग्रे विद्वद्वर ब्रह्मरमेश रुद्रगुरुभिर्भूपाक्षिधीहेतुभि र्वैदिक सम्प्रदाय कथने शश्वत्सदा ध्येया। यद्वा, विद्वद्वराग्रे ब्रह्म रमेशरुद्र गुरुभिर्भूपाक्षिधीहेतुभि श्शाश्वद्वैदिक सम्प्रदाय कथने सदा ध्येया। सा गायित्री निज सेवकान्सुतजनान् भाले भस्म त्रिपुण्ड्र कान्ति लसितान् रुद्राक्ष माला धरान्वै द्विजान् शाक्तान्प्रियान्पायात् ॥ ६ ॥

भाष्यम्।

कथम्भूता गायत्री? (अग्रे) पुरा सृष्ट्यादौ स्टष्टिप्रकरण निदर्शनाय (विद्वद्वरब्रह्मरमेशरुद्रगुरुभिः) विद्वत्सुवरः श्रेष्ठोयः स विद्वद्वरस्तेन ब्रह्मा चतुराननः, रमेशोविष्णुः, रुद्रोमहेशः, एतैः

(१) शश्वत, शाश्वद्वा इति बोधव्यम् ॥

परम्परा गुरुभिरस्माकमुपदेष्टृभिः ॥ कथम्भूतै ब्रह्मरमेशरुद्र-गुरुभिः ? (भूपाद्विधीहेतुभिः) भूसत्तायां तेन सृष्टिः, पारक्षणे तेन पालनम् द्वितये तेन संहरणम् धीबुद्धिस्तेन मेधा, एतेषां सृष्टिस्थित प्रलयमेधानां कार्य्याणां हेतु कारण मेतैः (वैदिकः) ज्ञानप्रदायकः (सम्प्रदायः) (१) गुरुपरम्परागत सदुपदेश स्तस्यो-पदेशस्य (कथने) गायत्र्या (२) उपदेश कथने भाषण समये तस्याः

---

(१) कस्मात्सम्प्रदाय इति ॥ सम्यक् प्रदीयते ज्ञानं सम्प्रदायः प्रकीर्तितः ॥ इति शक्ति संगमतन्त्रे ॥ पुनः कुलार्णव तन्त्रे ॥ संसारसार भूतत्वात्प्रकाशानन्ददानतः ॥ यशः सौभाग्य करणात्सम्प्रदायः प्रकीर्तितः ॥ उल्लास १७ ॥

(२) गायत्र्या उपदेशकथने ॥ ब्रह्मादीनाम्प्रति सृष्टिक्रम निदर्शनाय गायत्र्या यदुपदेशं कृता तन्निर्दिश्यते ॥ गृहाणाज महत्तत्वं महङ्कारं तदुद्भवम् ॥ ततः सर्वाणि भूतानि रचयस्व यथापुरा ॥ व्रजन्तु स्वानि धिष्णानि विरच्य निवसन्तु वः ॥ स्वानि स्वानि च कार्य्याणि कुर्वन्तु देव भावित्ताम् [शिवेन भाविताः चिन्तिताः] गृहाणेमां विधेशक्ति रूपाणां चारुहासिनीम् ॥ महासरस्वतीं नाम्ना रजोगुणयुतां वराम् ॥ श्वेताम्बरधरां दिव्यां दिव्यभूषणभूषिताम् ॥ वरासनसमारूढां क्रीडार्थं सहचारिणीम् ॥ एषा सहचरी नित्यं भविष्यति वराङ्गना ॥ मावमंत्वा विभूतिं मे मत्वा पूज्यतमां प्रियाम् ॥ गच्छत्वमनया सार्द्धं सत्यलोकं व्रजाशु वै ॥ बीजाच्चतुर्विधं सर्वं समुत्पादय साम्प्रतम् ॥ लिङ्गकोशाश्च जीवैस्तैः सहिताः कर्म्मभिस्तथा ॥ वर्त्तन्ते स्थिताः काले तान् कुरु त्वं यथा पुरा ॥ कालकर्म्म स्वभावाख्यैः कारणैः सकलं जगत् ॥ स्वभावस्व-गुणैर्युक्तं पूर्ववत् सचराऽचरम् ॥ नवाक्षरमिमं मन्त्रं बीजध्यानयुतं सदा ॥ जपन् सर्वाणि कार्य्याणि कुरुत्वं कमलोद्भव ॥ मन्त्राणामुत्तमोऽयं वैत्वंजानीहि महामते ॥ हृदये ते सदा धार्य्यः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ इत्युक्त्वा मां जगन्माता हरिंप्राह शुचिस्मते ॥ विष्णोव्रज गृहाणेमां महालक्ष्मीं मनोहराम् ॥ सदा वक्षस्थले स्थाने भविता नात्र संशयः ॥ क्रीडार्थं ते मयादत्ता शक्तिः सर्वार्थदाशिवा ॥ त्वयेयं नावऽमन्तव्या मान-नीया च सर्वदा ॥ लक्ष्मीनारायणाख्योऽयं योगोवै विहितो मया ॥ जीवनार्थं कृता यज्ञा देवानां सर्वथा मया ॥ अविरोधेन सततं वर्तितव्यं त्रिभिः सदा ॥ माननीयस्त्वया

स्वरूपम् [शश्वत] पुनः पुनः (सदा) सर्वदा (ध्येया) उपास्या ॥ तत्रप्रमाणम् नाऽहंभवो न च विरञ्चि विवेद मातः, कोन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाष्यम् ॥ कानीह सन्ति भुवनानि महाप्रभावे ह्यस्मिन् भवानि चरिते रचना कलापे ॥

विष्णुः पूजनीयश्च सर्वदा ॥ सत्वगुण प्रधानत्वादधिकः सर्वतः सदा ॥ यदा यदाहि कार्य्यं वा भविष्यति दुरत्ययम् ॥ करिष्यति पृथिव्यां वै अवतारं तदा हरिः ॥ तिर्यग् योनावथान्यत्र मानुषीं तनु माश्रितः ॥ दानवानां विनाशे वै करिष्यति जनार्दनः ॥ भवोऽयं [शिवोऽयं] ते सहायश्च भविष्यति महाबलः ॥ समुत्पाद्य सुरान् सर्वान् विहरस्व यथासुखम् ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या नानायज्ञैः सदक्षिणैः ॥ यजिष्यन्ति विधानेन सर्वान् वः सु समाहिताः ॥ मन्नामोच्चारणात् सर्वे मखेषु सकलेषु च ॥ तदा तृप्ताश्चसन्तुष्टा भविष्यध्वं सुराःकिल ॥ शिवश्च माननीयो वै सर्वथा सत्तमोगुणः ॥ यज्ञकार्य्येषु सर्वेषु पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ यदा पुनः सुराणांवै भयं दैत्याद्भविष्यति ॥ शक्तयोमे तदोत्पन्ना हरिष्यन्ति सुविग्रहाः॥ वाराही वैष्णवी गौरी नारसिंही शची शिवा॥ अपरो गुणभेदोस्ति शृणुविष्णो ब्रवीमिते ॥ मुख्यः सत्व गुणस्तेऽस्तु परमात्मा विचिन्तने [परमात्माशिवस्तस्यविचिन्तने] गौणत्वेऽपि परो ज्ञातौ रजोगुणतमोगुणौ ॥ लक्ष्म्यासह विकारेषु नाना भेदेषु सर्वदा ॥ रजोगुणयुतो भूत्वा विहरस्व मया सह ॥ वाग्बीजं [ऐं] कामराजश्च [क्लीं] मायाबीजं [ह्रीं] तृतीयकम् ॥ मन्त्रोऽयं त्वं रमाकान्ते मद्दत्तः परमार्थदः ॥ गृहीत्वा जप तं नित्यं विहरस्व यथासुखम् ॥ नतेमृत्यु भयंविष्णो नकालप्रभवं भयम् ॥ यावदेषविहारोमे भविष्यति सुनिश्चयः ॥ संहरिष्याम्यहं सर्वं यदा विश्वं चराचरम् ॥ भवन्तोऽपि तदा नूनं मयि लीना भविष्यथ ॥ स्मर्त्तव्योऽयं सदामन्त्रः कामदो मोक्षदस्तथा ॥ उद्गीते नच [ॐकारेण] संयुक्तः कर्त्तव्यः शुभमिच्छतः ॥ कारयित्वाथ वैकुण्ठं वसितव्यं पुरुषोत्तम ॥ विहरस्व यथाकामं चिन्तयन्मां सनातनीम् [सनातनः शिवस्तस्य साकारस्वरूपिणीम्] इत्युक्त्वा वासुदेवं सा त्रिगुणा प्रकृतिः परा ॥ निर्गुणा शङ्करंप्राह देवमुचिदमृतं वचः ॥ गृहाण हरगौरीं त्वं महाकालीं मनोहराम् ॥ कैलासं कारयित्वाच विहरस्व यथा सुखम् ॥ मुख्यस्तमोगुणस्तेऽस्तु गौणौसत्वरजोगुणौ॥ विहरासुरनाशार्थं रजोगुणतमोगुणौ ॥ तपस्तप्तुं तथाकर्त्तुं स्मरणं परमात्मनः ॥ शर्व्वः

याचेऽम्ब तेऽङ्घ्रि कमलं प्रणिपत्य कामं चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत् ॥ नामाऽपि वक्त्र कुहरे सततं तवैव सन्दर्शनं तव पदाम्बुजयोः सदैव ॥ गायत्र्यसि प्रथम वेद कला त्वमेव स्वाहा स्वधा भगवती सगुणार्द्ध मात्रा ॥ आम्नाय एव विहितो निगमो भवत्या, सञ्जीवनाय सततं सुर पूर्व्वजानाम् ॥ इति देवी भागवते तृतीये स्कन्धे सृष्टि प्रकरणनिदर्शने भगवतीं प्रति भगवद् वाक्यम् ॥ अध्या० ४।३५,३७,४५ ॥ पुनस्तत्रैव भगवतीं प्रति शिवावाक्यम् ॥ सकल लोक सिसृक्षुरहं हरिः कमल भूश्च भवेम यदाम्बिके ॥ तव पदाम्बुज पांशु परिग्रहं समधि गम्य तथा ननु चक्रिमे ॥ यदि दयार्द्रमनां न सदाम्बिके कथमहं विहितश्च तमो गुणः ॥ कमलजश्च रजो गुण सम्भवः सुविहितः किमु सत्व गुणोहरिः ॥ यदि न ते विषमा मतिरम्बिके कथमिदं बहुधा विहितं जगत् ॥ सचिव भूपति भृत्य जनाऽवृतं बहुधनैर धनैश्च समाकुलम् ॥ तव गुणास्त्रय एव सदा क्षमा प्रकटनावन संहरणेषु वै ॥ हरिहरद्रुहिणाश्च क्रमात् त्वया विरचिता जगतां किल कारणम् ॥ कुरु दयां दयसे यदि देवि मां कथय मन्त्र मना विलमद्भुतम् ॥ समभवं प्रजपन् सुखिनो ह्यहं सुविशदञ्च नवार्ण मनुत्तमम् ॥

सत्वगुणः शान्तो गृहीतव्यः सदानघ ॥ सर्वदा त्रिगुणा यूयं सृष्टिस्थित्यन्त कारकाः ॥ एभिर्विहीनं संसारे वस्तुनैवात्र कुत्रचित् ॥ वस्तुमात्रंतु यद्दृश्यं संसारे त्रिगुणं हितत् ॥ दृश्यश्चनिर्गुणं लोके न भूतो न भविष्यति ॥ निर्गुणः परमात्माऽसौ नतु दृश्यः कदाचन ॥ सगुणानिर्गुणाचाऽहं समये शङ्करोत्तम ॥ सदाहंकारणं शम्भो नच कार्य्यं कदाचनः ॥ सगुणाकारणात्वाद्वै निर्गुणापुरुषान्तिके [परशिवस्यान्तिके] व्रजस्त्वद्य विमानेन कार्य्यार्थं ममसत्तमाः ॥ स्मरणाद्द दर्शनं तुभ्यं दास्येऽहं विषमेस्थिते ॥ स्मरतव्याऽहं सदा देवाः परमात्मासनातनः ॥ उभयोः स्मरणादेव कार्य्यंसिद्धिरसंशयः ॥ इति देवी भागवते तृतीयेस्कन्धे सृष्टिप्रकरणनिदर्शने नारदं प्रति ब्रह्मवाक्यम् ॥ अ० ६ ॥

इत्युक्ता सा तदा देवी शिवेनाद्भुत तेजसा ॥ उच्चचाराम्बिका मन्त्रं प्रस्फुटञ्च नवाक्षरम् ॥ तं गृहीत्वा महादेवः परां मुदमवाप ह ॥ प्रणम्य चरणौ देव्यास्तत्रैवावस्थितः शिवः ॥ जपश्चवाक्षरं मन्त्रं कामदं मोक्षदं तथा ॥ बीजयुक्तं शुभोच्चारं शंकरस्थिवांस्तदा ॥ अध्या० ५।७+२४ ॥ पुनस्तत्रैव भगवतीं प्रति ब्रह्मवाक्यम् ॥ कर्त्ताऽहं प्रकरोमि सर्वमखिलं ब्रह्माण्डमत्यद्भुतम् । कोऽन्योऽस्तीह चराचरे त्रिभुवने मत्तः समर्थः पुमान् ॥ धन्योऽस्म्यत्र न संशयः किल यदा ब्रह्माऽस्मि लोकेतिगे ॥ मग्नोऽहं भवसागरे प्रवितते गर्व्वाभिवेशादिति ॥ अद्याऽहं तव पाद पङ्कजपरागादान गर्व्वेणवै ॥ धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणो जातः प्रसादाच्चते ॥ याचेत्वां भवभीतिनाश चतुरां मुक्तिप्रदाञ्चेश्वरीम् हित्वा मोहकृतं महार्त्तिनिगडं त्वद्भक्ति युक्तंकुरु ॥ श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः प्रकुर्वन्ति मूढाः समाधौस्थितावै । नजानन्ति तेनाम मोक्षप्रदंवा समुच्चारितं जातु मातश्मिषेण ॥ विचारे परेतत्व सांख्याविधाने पदे मोहिता नामते संविहाय ॥ नकिन्ते विमूढा भवाब्धौ भवानि त्वमेवासि संसारमुक्ति प्रदावै ॥ नकित्वं समर्थासि विश्वं विधातुं दृशैवाशु सर्वं चतुर्धा विभक्तम् ॥ विनोदार्थमेवं विधिस्मास्विधायादि सर्गे किलेदं करोषीति कामम् त्वया (१) संयुतोऽहं विकर्तुं समर्थोहिरक्षा तुमम्चत्वयासंयुतश्च ॥

---

(१) त्वयासंयुतोऽहमिति ॥ अथसृष्ट्यादौ सम्प्रद यनिदर्शनाय भगवत्या प्रादुर्भावमाह ॥ युगेयुगे चन्द्रसंख्यं कलौ खण्डचतुष्टये ॥ षट्शती वत्सरान्तेतु द्विसप्तत्युत्तरं शिवे ॥ आविर्भवति देवेशी दिव्यौघद्वारतः शिवे ॥ इति शक्तिसंगमतन्त्रे ॥ पुनस्तत्रैव प्रयोजनमाह ॥ बौद्धपाखण्ड नाशार्थं सम्प्रदायार्थमेवच ॥ सम्प्रदायसंकरणानाम् विनाशार्थं महेश्वरि ॥ सम्प्रदाय स्थापनार्थाय ब्राह्मण्यं रक्षणायच ॥ मन्त्रशास्त्रस्य [वेदस्य] सिद्ध्यर्थं माविर्भवति पार्वती ॥ पट० १ ॥

हरः सम्प्रहर्तुं त्वयैवेहयुक्तः क्षमानाद्यसर्वैस्त्वयाविप्रयुक्ताः ॥ अध्या० ५॥ यद्वा, (विद्वद्वराग्रे) विद्वत्सु देवेषु [विद्वा (१) सोहि-देवाइति नैरुक्ताः]वरःश्रेष्ठः कः ? इन्द्रः सविद्वद्वरस्तस्याग्रे। यद्वा, मनुष्याणामध्ये विद्वत्सुवरः श्रेष्ठोयः सविद्वद्वरस्तेनाऽङ्गिरामरीच-वशिष्ठादयोब्रह्मणोर्मानसिकपुत्रा ब्रह्मर्षयस्तेषामग्रे (ब्रह्मरमेशरुद्र-गुरुभिः (वैदिकः) वैदिको वेदेन वेदाख्य गायत्र्याः शिवस्वरूपेण यः कथित उपदिष्टस्स वैदिकः [मन्त्राकारेणस्माभिः पठनीयः] ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ अहमेव स्वयमिदं [वेदम्] वदिष्यामि जुष्टं देवानामुतमानुषाणाम् ॥ यंकामये तन्तमुग्रंकृणोमि तंब्रह्माणं तमृषिं तंसुमेधाम् ॥ इत्यथर्ववेदसंहितायां देवीसूक्ते ॥ का०४। अनु० ६ सू० ३० । ३ ॥ पुनर्देवीभागवते सप्तमस्कन्धे भगवती-गीतायां हिमवानं प्रति भगवती वाक्यम् ॥ धर्म्मात् सञ्जायते भक्तिर्भक्त्यासञ्जायते परम् ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत् स धर्म्मः प्रकीर्तितः ॥ अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासःस उच्यते ॥ सर्वज्ञात् सर्वशक्तेश्च मत्तोवेदः समुत्थितः ॥ अज्ञानस्य मभाभा-वाद् प्रमाणा न च श्रुतिः ॥ स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैवच निर्गताः ॥ मन्वादीनां स्मृतीनाञ्च ततः प्रामाण्यमिष्यते ॥ तस्मान्मुमुक्षुर्धर्म्मार्थं सर्वथा वेदमाश्रयेत् ॥ राजाऽज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ॥ सर्वेशान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या ॥ कथं नृभिः॥ मदाज्ञा रक्षणार्थन्तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः ॥ मयासृष्टा-स्ततोज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः ॥ यो वेदधर्म्म मुत्सृज्य धर्म्ममन्यं समाश्रयेत् ॥ राजा प्रवासयेद् देशान्निजादेतानधर्म्मिणान् ॥ सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजोभवेत् ॥ वेदाधिकार हीनस्तु भवे-

(१) विद्वांसरिति ॥ विद्वांसः शास्त्रसंस्कृतमतयः प्रमाण प्रमेयस्वरूपविज्ञानकुश-लाः ॥ तेच वेदार्थविदो विद्वांसोनान्ये यतोवेदांऽन्यत्र धर्म्मे प्रतियेगृहीतप्रमाण्यास्तेविपरीत प्रमाण प्रमेय ग्रहणाद् विद्वांस एव ॥ इति मनु भाष्ये ॥ अ० २।१ ॥

तत्राधिकारवान् ॥ अध्या० ३९ ॥ पुनर्बृहन्नीलतन्त्रे ॥ स्वयं प्रवर्त्तते वेदस्तत् कर्तानास्ति सुन्दरि ॥ स्वयम्भुवोंऽशो भगवान् वेदोगीतस्त्वया पुरा ॥ शिवाद्या (१) [रुद्राद्याः] ऋषिपर्यन्ताः स्मार्ता न कारकाः ॥ प्रकाशका भवन्त्येते कृष्णाद्यास्त्रिदिवौकसः वैदिकप्रतिपाद्यश्च अर्थोधर्म्मः प्रकीर्तितः ॥ विपरीतं महेशानि अधर्म्मो भवति प्रिये ॥ पट० ५ ॥ पुनः रुद्रयामलोत्तरतन्त्रे ॥ सर्वदेवमयी देवी सर्वमंत्रस्वरूपिणी ॥ सर्वमन्त्रात्मिका [मातृक-स्वरूपा] विद्या [गायत्री] वेदविद्याप्रकाशिनी ॥ पट० १७।१२ ॥ तेन गायत्र्या उपदेशमेव वेद इतिसिद्धम् ॥ (सम्प्रदायः(२))

---

(१) शिवाद्या इति ॥ परापरगुरुस्त्वंहि परमेष्टि [इष्टोगायत्री तस्या उपासकोयः सः परमेष्ठीति बोधव्यम्] रहंगुरुः ॥ सर्वतन्त्रेषु मन्त्रेषु स्वयं प्रकृति रूपिणी ॥ इति बृहन्नील तन्त्रे ॥ पट० १ ॥ पुनः कामाख्या तन्त्रे ॥ गुरुस्त्वं सर्व शास्त्राणां [वेदादीनाम्] महमेव प्रकाशकः ॥ त्वमेव गुरुरूपेण लोकानां त्राणकारिणीति ॥प० ३॥

(२) सम्प्रदाय इति ॥ सम्प्रदाय कथने सृष्ट्यादौ कति विधा गुरवो बभूवुरित्याह ॥ तत्र परमगुरुः, परापरगुरुः, परमेष्टीगुरुः, परगुरुः, गुरु इतिपञ्चगुरवो बभूवुः । परमगुरुः परशिवः, परापरगुरुर्गायत्री, परमेष्टीगुरुर्महेशाख्यः शिवः, परगुरुर्विष्णु, गुरुर्ब्रह्मा चतुराननः । एतेषां पञ्च गुरूणांमध्येऽस्माकं देवमनुजाऽसुर किन्नर यक्षादीन्क उपदेष्टा सम्प्रदायप्रचारको बभूवेति प्रश्ने सतीत्याह रुद्राख्य शिव एव । कस्मात् ? पर शिवस्याधिकांशभूतत्वात् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ महेश्वर सहस्रांशाद्रुद्रमूर्तिरजायते ॥ अघोर वदनाकारा स्तेजस्तत्वाधिपश्चसः ॥ गौरी शक्ति युतो वामे सर्वसंहारकृत् प्रभुः ॥ इति शिवपुराणे कैलास संहितायाम् ॥ अ० १०।५१+५२ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ रुद्रमूर्तेः सहस्रांशाद्विष्णुरेवाभवज्जनिः ॥ सवामदेवचक्रात्मा वारितत्वैकनायकः ॥ रक्षाशक्तियुतो वामे सर्वरक्षाकरोमहान् ॥ अ० १०।६०+६१॥ पुनस्तत्रैव ॥ विष्णोरेवसहस्रांशात्सम्बभूवपितामहः ॥ सद्योजात मुखात्मायः पृथ्वीतत्वनायकः ॥ वाग्देवीसहितोवामे सृष्टिकर्त्ता जगत्प्रभुः ॥ अ० १०।६७+६८॥ पुनस्तत्रैव वायवीयसंहितायाम् ॥ पुराणं धर्म्मशास्त्रञ्च विद्याह्येता चतुर्दश ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेत्यनुक्रमात् ॥ अर्थ-

गायत्र्या उपदिष्टां परम्परागतसद्गुपदेशस्तस्य (कथन) भाषण समये आदेश व्याख्यान समये सरस्वतीस्वरूपेण (सदा) सर्वदा (ध्येया) उपास्या ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ सहस्रारे गुरोः [शिवस्य] पादपङ्कजम् ध्यानमाचरेत् ॥ विचिन्तयेत्ततः श्रीमान् गुरुरूपां सरस्वतीम् ॥ इति रुद्रयामलोत्तरतन्त्रे ॥ पट० ५४।२१ ॥ तत्रकीदृशां सरस्वतीं ध्येयामित्याह ॥ शुक्लकृष्णारुणाभासां

शास्त्रं परंतस्माद्विद्याह्यष्टादशस्मृता ॥ अष्टादशानां विद्यानामेतासां भिन्नवर्त्तनाम् ॥ आदिकर्त्ता कविःसाक्षाच्छूलपाणिरितिः श्रुतिः ॥ अ० १।२२ + २४॥ पुनर्नारायणोपनिषदि यजुर्वेदीयारुद्रयाम् ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूताना ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मोधिपतिर्ब्रह्मा शिवोमेअस्तु सदाशिवोम् ॥ इतिश्रुतिः ॥ पुनः सूतसंहितायां यज्ञवैभवखण्डे ॥ विष्ण्वादीनां तुदेवानां ध्यानं चाधममिष्यते ॥ अतोमोक्षार्थिभिः प्राज्ञैः शिवएकः शिवंकरः ॥ महापाप युतांपुंसां पूर्वजन्मसुसुव्रताः ॥ विष्णुः सर्वाधिकोभाति न साक्षात्परमेश्वरः ॥ विष्णुसर्वाधिकोभाति नात्रकोसनसंशयः ॥ विष्णुः सर्वाधिकोनान्यः इतिचिन्तयतां नृणाम् ॥ नास्तिसंसारविच्छित्तिः कल्पकोटि शतैरपि ॥ तेषानैवचमोक्षाशा, कल्प कोटिशतैरपि ॥ अ० २।६० + ६४ ॥ पुनस्तत्रैव सूतगीतायाम् ॥ रुद्रस्य विग्रहंशुक्लं कृष्णं विष्णोश्चविग्रहं ॥ ब्रह्मणोविग्रहं रक्तं चिन्तयेद्भुक्तिमुक्तये ॥ शौक्ल्यंसत्वगुणाज्जातं रागोजातोरजोगुणात् ॥ कार्ष्ण्यं तमोगुणाज्जातमितिविन्द्यात्समासतः ॥ ब्रह्मविष्ण्वादि रूपेण केवलं मुनिपुंगवाः ॥ ब्रह्माविष्ण्वादयस्त्वेव नपरंतत्वमास्तिकाः ॥ तथापि रुद्रः सर्वेषामुत्कृष्टः परिकीर्त्तितः ॥ स्वशरीरतया यस्मान्मनुते सत्वमुत्तमम् ॥ रजसा तमसा सत्यमुत्कृष्टंहिद्विजोत्तमाः ॥ सत्वात्सुखंचयत्किञ्चिदपरंपरमेवच ॥ परतत्व प्रकाशस्तु रुद्रस्यैवमहत्तरः ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां न तथा मुनिपुंगवाः ॥ अस्तिरुद्रस्य विप्रेन्द्राः अन्तः सत्वं वहिस्तमः ॥ विष्णोरंतस्तमः सत्वंवहिरस्ति रजोगुणः ॥ अन्तर्वहिश्चविप्रेन्द्रा अस्तितस्य प्रजापतेः ॥ अतोपेश्वगुणंसत्वं मनुष्याविवदन्चि ॥ अनेक जन्मसिद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम् ॥ हरः श्रेष्ठो हरेः साक्षादिति बुद्धिः प्रजायते ॥ महापापवतां नृणां हरिः श्रेष्ठोहरादिति ॥ बुद्धिर्विजायते तेषां सदासंसार एवहि ॥ अ० २ ॥ पुनः शिवपुराणेवायवीय संहितायाम् ॥ उत्तमंरुद्रदैवत्यं मध्यमंविष्णुदैवतम् ॥ अधमंब्रह्मदैव-

चतुर्बाहु धरां पराम्। शुक्लाम्बर परीधानां कटाक्षविशिखो-
ज्ज्वलाम् ॥ शङ्खेन्दुकुन्द शङ्काशां चित्रांशुकपरिच्छदाम्
॥ शरच्चन्द्रप्रसन्नास्यां चित्रवेणीविरा जिताम् ॥ नाना-
भरणशोभाढ्यां लसत्कोकनदेक्षणाम् ॥ चतुर्बाहुधरां दिव्यां
ध्यायेच्छिवस्वरूपिणीम् ॥ ज्ञात्वायः कुरुते देवि श्लोके-
श्लोके च योजनम् ॥ तदा फलवाप्नोति पुराणस्य च नान्य-
था ॥ अष्टसिद्धिपरिज्ञानं विना पुस्तकवाचनम् ॥ यः करोति
महामूर्खः कुक्करध्वनिवद्ध्वनिः ॥ इति गायत्री तन्त्रे प्रथम-

त्वं मित्याहरनुपूर्वशः ॥ इति कृष्णम्प्रत्युपमन्यु वाक्यम् ॥ अ० १४।५७ ॥ तेनब्रह्म-
विष्णुरुद्राणां रुद्रस्यश्रेष्टत्वंसिद्धम् ॥ अथ रुद्राख्य शिव एव सृष्ट्यारम्भे वैदिकसम्प्रदाय
प्रचारको वभूवेति स्पष्टोक्तिपठ्ठे ॥ तत्र स्कन्दपुराणे सूतसंहितान्तर्गत यज्ञवैभवखण्डे
ऋषिं प्रति सूतवाक्यम् ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि सम्प्रदायपरम्पराम् ॥ यद्विज्ञानेन द्विज-
श्रेष्ठोगुरुर्भवति सुव्रताः ॥ यः शिवः सर्वभूतानां ईश्वरः स्वत एवतु ॥ ईशानः सर्ववि-
द्यानां स एवादि गुरुर्बुधाः ॥ शिव शिष्यो महा विष्णुः सर्वज्ञान महोदधिः ॥ तस्मात्त-
त्परिज्ञानो ब्रह्मासर्वजगत्प्रभुः ॥ सनत्कुमारोभगवान् ब्रह्मणः श्रुतवेदनः ॥ सनत्कुमारा-
त्सर्वज्ञात्कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ आवाप्ताखिल विज्ञानस्तस्मादेवश्रुतंमया ॥ मत्तो लब्ध
परिज्ञाना यूयं सत्यपरायणाः ॥ एवं बुध्वा मुनिश्रेष्ठाः सम्प्रदाय परम्पराम् ॥ अ०
३५।१ + ६ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ सम्प्रदायविहीनाय विद्यावेदान्तपारगाः ॥ सा विद्या
नैवविद्यास्यादिति तत्त्वविदांस्थितिः ॥ परंपर्य्यपरिज्ञानं परविद्याप्रवर्तकम् ॥ पारंपर्य्यावि-
बोधेन विद्यासा वीर्य्यवत्तरा ॥ पारंपर्य्यपरिज्ञानादेव पाशानिकृंतनम् ॥ तस्मात्प्राज्ञः स्व-
विद्यायाः सन्तित ज्ञानवान् भवेत् ॥ यथा गोत्र परिज्ञानं विवाहस्योपकारकम् ॥ पारं-
पर्य्यं परिज्ञानं तथा ज्ञानोपकारकम् ॥ विद्यासंततयोर्विप्रा बहुरूपा श्रुतौश्रुताः ॥ वस्तत्सन्त-
तिविज्ञानं विद्यासिद्धेस्तुकारणम् ॥ अ० ३५।१६ + २३ ॥ पुनः शक्तिसंगम तन्त्रे ॥
सम्प्रदायविहीनानां कुलशास्त्र [कुलशक्तिर्गायत्रीतस्याः शास्त्रंवेदः । नहिवेदात्परं-(१)

---

(१) नहिवेदात्परंशास्त्रमिति ॥ वेदमार्गरतो नित्यं ब्राह्मणो भवति ध्रुवम् ॥ वेदेन
रहितो यस्तु सचाण्डालः प्रकीर्तितः ॥ इति शक्तिसंगम तन्त्रे ॥ पट० ७ ॥

परिच्छेदे ब्राह्मण पटले ॥ (सागायत्री) साऽस्माकं परापर गुरुः स्वरूपा त्राणकर्त्री गायत्री स्वसुतान्) अस्मान् स्वपुत्रान् ॥ कथम्भूतांस्वपुत्रान् ? (वै) इतिनिश्चयेन (द्विजान्) द्वाभ्यांजन्मसंस्काराभ्यां योजायते सद्विजस्तत्र जन्म जननम् संस्कारस्तु उपनयनमुपनयनसमये गायत्री मन्त्रस्य दीक्षैव, तेन सैव ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यानां द्विजत्व प्राप्तिकारणं तेन ये गायत्री मन्त्रेण दीक्षिता ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यास्ते द्विजा नान्याः, किंत्वन्या व्रात्यास्तेन तां द्विजान् ॥ तत्रप्रमाणम् ॥ मातुरग्रे प्रजायन्ते द्वितीयं मौंजिबन्धनात् ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय विशोयस्मात्तस्मादेते द्विजा स्मृताः ॥ इति याज्ञवल्क्य स्मृतौ ॥ अध्या० १।३८ ॥ पुनर्मनुस्मृतौ ॥ मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीय मौंजिबन्धनम् ॥ तृतीय यज्ञ दीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचो-

---

शास्त्रमितिवचनात्] प्रयोजनान् ॥ सर्वंगर्हित इत्युक्तास्ते वाह्यासंप्रकीर्तिताः ॥प० ६॥ पुनस्तत्रैव ॥ गुरुहीनात् क्रमत्यागात् सम्प्रदाय वियोगतः ॥ दारिद्र्यं प्रथमं भूयान्नात्र कार्य्यं विचारणः ॥ पट० १६ ॥ पुनः स्कन्दपुराणे काशीखण्डे । एकः शिवतमः पंथा शिवेनैव प्रदर्शितः॥ नृणां संसृतिवद्धानां सद्यो मुक्तिकरः परः ॥अ० २२।२२॥ पुनः कूर्म्मपुराणे कैलास यात्रायां ऋषींप्रति कृष्ण वाक्यम् ॥ कलौरुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः॥ तदेवसाधयेन्नृणां देवतानाश्चदैवतम् ॥ करिष्यत्यवताराणि [शङ्करांचार्य्यांघवताराणि] शंकरो नीललोहितः ॥ श्रौतस्मार्तंप्रतिष्ठार्थं भक्तानांहितकाम्यया ॥ उपदेश्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्म संहितम् ॥ सर्ववेदान्त सारं हि धर्म्मान् वेदनिदर्शितान् ॥ सर्ववर्णान् समुद्दिश्य स्वधर्म्मान् योनिदर्शिताः ॥ एतम्प्रीतानि सेवन्ते येनकेनोपचारतः ॥ विजित्वा कलिजान्दोषान् यान्तिते परमं पदम् ॥ अनायासेन सुमहत् पुण्यमाप्नोतिमानवः ॥ अनेक दोषदुष्टस्य कलेरेकोमहान् गुणः ॥ तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन प्राप्य माहेश्वरं युगम् ॥ विशेषाद्ब्राह्मणो रुद्रमीशानं शरणं व्रजेत् ॥ इति शंकरावतारकथने ॥ अ० ३०।३२-३८ ॥ पुनरेतदवतार विषयः शक्तिसंगम तन्त्रे सप्तमम् पटलेऽपिद्रष्टव्यम् ॥ , अत्र कस्मान्मानुषोगुरुर्भवतीत्याह ॥ तत्र कामाख्या तन्त्रे भगवतीं प्रतिशिव वाक्यम् ॥

नाम् ॥ तत्र यद्ब्रह्म जन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिन्हितम् ॥ तत्रास्य माता सावित्री [गायत्री] पिता त्वाचार्य्य (१) [शिव] उच्यते ॥ अध्या० २।१६६ + १७० ॥ कथम्भूतान् द्विजान्? (शाक्तान्) शक्तिस्वरूपेण स्वगुरोर्गायत्र्युपासकान् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ॥ आदिदेवीमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम् ॥ इति याज्ञवल्क्यवाक्यम् ॥ पुनर्निर्वाण-तन्त्रे शिववाक्यम् ॥ शाक्ता एव द्विजाः सर्वे न शैवा न च वैष्णवा ॥ उपासन्ते यतो देवीं गायत्रीं परमाक्षरोम् ॥ [ॐकारस्वरूपाम्] पट० ३।२॥ पुनर्देवीभागवते द्वादशस्कन्धे ॥ ब्रह्मादयोऽपि

गुरुः सदाशिवः प्रोक्त आदिनाथः स उच्यते ॥ महाकाययुतो देवः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ सनातनः परब्रह्म श्रीधर्म्मस्त्रिगुणः प्रभुः ॥ त्वत्प्रसादान्महादेवि शिवोऽहमजरामरः ॥ अत एव गुरुर्नैव मनुजः किन्तु कल्पना ॥ दीक्षायै साधकानाञ्च वृक्षादौ पूजनं तथा ॥ मंत्रदाता शिरः पद्मे यद्ध्यानं कुरुते गुरोः (शिवस्य) ॥ तद्ध्यानं शिष्यशिरसि चोपदिष्टं न चान्यथा ॥ अत एव महेशानि कुतो हि मानुषो गुरुः ॥ मानुषो गुरुता देवि कल्पना न तु तथ्यता ॥ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ॥ तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री-गुरवे नमः ॥ प्रसिद्धमिति यद्देवि तत्पदं दर्शको नरः ॥ अत एव नरे देवि गुरुता कल्पनैव हि ॥ न तु स्वयं गुरुर्नीचमूर्खता चोभयोरपि ॥ अयं गुरुरिति ज्ञानं शिष्योऽयं खलु मे वद ॥ दर्शकापटलास्यैव न स्वयं मानुषो गुरुः ॥ मोक्षो न जायते सत्यं मानुषे गुरुभावनात् ॥ पट० ४ ॥ पुनर्योगिनीतन्त्रे ॥ आदिनाथो महादेवि महाकालो हि यः स्मृतः ॥ गुरुः स एव देवेशि सर्वमन्त्रेऽधुनापरः ॥ शैवे शाक्ते वैष्णवे च गाणपत्ये तथैन्दवे ॥ महाशैवे च सौरे च स गुरुर्नात्र संशयः ॥ मन्त्रवक्ता स एव स्यान्नापरः परमेश्वरि ॥ मन्त्रप्रदानकाले हि मानुष्यो नगनन्दिनि ॥ अधिष्ठानं भवेत्तस्य महाकालस्य शङ्करि ॥ अतस्तु गुरुता देवि मानुषी न संशयः ॥ मन्त्रदाता शिरःपद्मे यज्ज्ञानं कुरुते गुरुः ॥ तज्ज्ञानं कुरुते देवि शिष्योऽपि शीर्षपंकजे ॥ अत एव महेशानि एक एव गुरुः स्मृतः ॥ अधिष्ठानं भवेत्तस्य मानुषस्य महेश्वरि ॥ पट० १ ॥

(१) आचार्य्यस्य लक्षणमार्य्यसम्प्रदायप्रदर्शकगायत्रीभाष्ये द्रष्टव्यम् ॥

सन्ध्यायां तां [गायत्रीम्] ध्यायन्ति जपन्ति च ॥ वेदा जपन्ति तां नित्यं वेदोपास्या ततः स्मृता॥ तस्मात्सर्वे द्विजाः शाक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ॥ आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम् ॥ अध्या० १६।:६+१७ ॥ पुनर्विश्वामित्रेणोक्तं गायत्रीकल्पे ॥ सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ॥ मूलमन्त्रं [ओङ्कारं सावित्रीमन्त्रं वा] तु संशोध्य गायत्रीं वेदमातरम् ॥ पट० ८।८२ ॥ यद्वा, अस्माकं परमेष्ठि गुरुः शिवस्तस्य शाक्तभूतत्वाद्वयमेव तस्य साम्प्रदायिकाः शाक्ताः ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ शाक्तस्तु शङ्करो ज्ञेय-(१) स्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ॥ स्वयं गङ्गाधरो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले॥ इति मुण्डमाल तन्त्रवचनं शब्दकल्पद्रुमे॥ पुनर्गन्धर्वतन्त्रे शिववाक्यम् ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा चाहमात्मवत् समुपास्महे ॥ तपःक्लेशैश्च तां देवीं पशुभाव-[जीवभाव] स्थितो विधिः ॥ सन्तोष्य परया भक्त्या सावित्रीं वेदमातरम् ॥ तद्भावमाश्रितो विप्र-[द्विजः] स्तामेव समुपासते ॥ पट० ३ ॥ पुनः रुद्रयामलतन्त्रे गायत्रीरहस्ये ॥ देवदेवीति या देवी वेदमाता सरस्वती॥

---

(१) शाक्तस्तु शङ्करो ज्ञेय इति ॥ शाक्तस्य शिवस्य वैदिकशाक्ताचारमाह ॥ परमेश-[शिवः] जपासक्तः सर्वतस्त्वदयान्वितः ॥ त्यागी भोक्ता विनीतश्चातिथिनित्यप्रपूजकः ॥ परनिन्दा परद्रोहः परीवादो महेश्वरि ॥ परस्त्री-परवित्ते च षष्टश्चैव प्रकीर्तितः ॥ वर्जयेत्सर्वमेतद्धि संख्यामन्यामतं भवेत्॥ परगेहं परीवादं परवित्तं प्रतिग्रहः॥ परकान्ता विशेषेण शाक्ते पञ्च विवर्जयेत् ॥ इति शक्तिसंगमतन्त्रे ॥ पट० १६ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ परान्नं परहस्तं च सर्वथा परिवर्जयेत् ॥ परहस्तस्तु सर्वपुण्यं जपपूजाहरः स्मृतः ॥ [कस्मात्] अन्यमन्त्रो जप्यमानस्त्वन्याचारेषु तत्परः ॥ सम्प्रदायेन संभिन्नः सर्वदोषसमन्वितः ॥ लोलुपश्चैव पाखण्डः प्रोक्तः कलियुगे नरः ॥ तेन यत् क्रियते पापं सदसद्वा महेश्वरि ॥ तद्धस्तभोजी देवेशि तदंशं लभते ध्रुवम् ॥ मिताचारोजपासक्तो गुरुभक्तो (गायत्रीभक्तो) जितेन्द्रियः॥ सत्यवक्ता महेशानि नरश्चैव सदा भवेत् ॥ पट० १६॥

गायत्री त्रिपदा देवी त्र्यक्षरी [ओंकारस्वरूपा] भुवनेश्वरी ॥ चतुर्विंशाक्षरी (तत्सवितुरिति) विद्या सा चैवाभीष्टदेवता ॥ सर्वसौख्यप्रजनकं सर्वज्ञानमयं शिवम्॥ परा परात्मा परमा कला [साकारस्वरूपा] ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ गायत्री सा महेशानि ! परब्रह्मात्मिका मता॥ यां देवीञ्च वरारोहे चेतसा चिन्तयाम्यहम्॥ ऐश्वर्य्यं च ततः प्राप्तं वरदादि त्वमेव च ॥ तेन सर्वे द्विजाः शाक्ता इति सिद्धम्॥ यद्वा शक्यते जेतुमनया सा शक्तिः कायजनन् सामर्थ्यम् ॥ प्रभावो-(१)त्साहमंत्रजभेदास्त्रिविधास्तेन सहितान् ॥ कथम्भूतान् शाक्तान् ? (प्रियान्) प्रीत्याश्रयान् ॥ कथम्भूतान् प्रीत्याश्रयान् प्रियान् ? (भाले भस्मत्रिपुण्ड्रकान्तिलसितान्) भाले ललाटपट्टे भस्मत्रिपुण्ड्रकम् , भस्मना शिवाङ्गभूषणेन विभूत्या वा या त्रिरेखा (तिस्रस्तिर्यग्रेखाः) भ्रुवोर्मध्ये क्रियते तत् त्रिपुण्ड्रकम्, तस्य त्रिपुण्ड्रस्य कान्तिः शोभा सा त्रिपुण्ड्रकान्तिस्तया लसितान् शोभितान् ॥ अथ भस्मना त्रिपुण्ड्रधारणमेवाचार्य्यस्यादिगुरो रुद्रस्य साम्प्रदायिकव्रतमिति स्पष्टीक्रियते ॥ आदिब्राह्मणभूतेन [रुद्र एवादिब्राह्मणस्तेन] त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम् ॥ यतोऽत एव विप्रस्तु [द्विजः] त्रिपुण्ड्रं धारयेत् सदा ॥ भस्मना वेदसिद्धेन त्रिपुण्ड्रं देहगुण्ठनम् ॥ रुद्रलिङ्गार्चनं वापि मोहतोऽपि च न त्यजेत् ॥ इति देवीभागवते

---

(१) प्रभावोत्साह इति ॥ प्रभावः कोषदण्डतेजः । तत्पर्य्यायः प्रतापः ॥ इत्यमरः २।८।२० ॥ कोषो धनं दण्डो दमः तद्धेतुत्वात् सैन्यमपि दण्डः ताभ्यां यत्तेजो जायते स प्रतापः प्रभावश्च कथ्यते ॥ इति भरतः॥ तत्र प्रभुत्वे साधकत्वात् प्रभावः प्रभुशक्तिः । विक्रमेण स्वशक्त्याविस्फुरणमुत्साहशक्तिः सा षड्विधा स्यात् ॥ उद्योगःसाहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ॥ षड्विधो यस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शंकते ॥ इतिगरुडपुराणे आदिखंडे अ० १११ । ३२ ॥

एकादशस्कन्धे नारदं प्रति भगवद्वाक्यम् ॥ अ० ६।३२ ॥ पुनस्तत्रैव द्वादशस्कन्धे ॥ न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं विना ॥ ततो धृत्वैव भस्माङ्गं गायत्रीजपमाचरेत् ॥ गायत्री मूलमेवाहुर्ब्राह्मण्यं मुनिपुंगव ॥ सा भस्मधारणाभावे न केनाप्युपदिश्यते ॥ न तावदधिकारोऽस्ति गायत्रीग्रहणे मुने ॥ यावन्न भस्म भालादौ धृतमग्निसमुद्भवम् ॥ अध्या० १५ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ ब्रह्मविद्योपदेशस्य [ब्रह्मविद्या गायत्रीमंत्रो वेदान्तप्रतिपादकोपनिषदो वा] साक्षादेवाधिकारिणः ॥ त एव नेतरे विद्वन् ये तु स्नाताः शिरो-(१) व्रतैः ॥ व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैरादरेण तु ॥ तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम् ॥ अध्या० ६।१४ + २० ॥ पुनर्महाभारते शान्तिपर्वणि दक्षं प्रति शिववाक्यम् ॥ मया पाशुपतं [व्रतं] दक्ष शुभमुत्पादितं पुरा ॥ अध्या० २८४।१२४ ॥ पुनः कूर्म्मपुराणे ऋषीं प्रति शिववाक्यम् ॥ निर्मितं हि मया पूर्वं व्रत पाशुपतं (२) शुभम् ॥ गुह्याद्गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसार-

(१) शिरोव्रतैरिति ॥ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः पञ्चभिः शुद्धेन भस्मना ॥ सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्य्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम् ॥ एतच्छिरोव्रतं कुर्य्यात्सन्ध्याकाले तु सादरम् ॥ यावद्विद्योदयस्तावत्तस्य विद्या खलूत्तमा ॥ इति देवीभागवते दशमस्कन्धे ॥ अ० १।१२ + १३ ॥

(२) व्रतं पाशुपतमिति ॥ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि यस्माद् व्रतमिदं पाशुपतं यद्भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत् तस्माद्ब्रह्म तदेतत्पाशुपतं पशुपाशविमोक्षणाय ॥ इति शिवाथर्वशीर्षे ॥ ५ ॥ यद्वा पशोर्जीवस्य रक्षणार्थं पशुपत्या शिवेन यदुपायग्रहणं कृतम् तत्पाशुपतव्रतम् ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ धर्म्मार्थमात्मशुद्ध्यर्थमुपायग्रहणं व्रतम् ॥ अथर्वाथर्वणैर्मन्त्रैर्गृहीत्वा भस्म पाण्डुरम् ॥ सर्वाङ्गोद्धूलनं यत्तद्व्रतं प्रोक्तं मनीषिभिः ॥ एतद्वेदशिरोनिष्ठाः प्राहुः पाशुपतं मुने ॥ केचिच्छिरोव्रतं प्राहुः केचिदत्याश्रमं विदुः ॥ केचित्तद्व्रतमित्यूचुः केचिच्छाम्भवमैश्वरम् ॥ इति स्कन्दपुराणान्तर्गतसूतसंहितायां ज्ञानयोगखंडे अध्या० १४।२५ + २८ ॥

विमुक्तये ॥ प्रशान्तः संयिंतमना भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ ब्रह्मचर्य्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतं चरेत् ॥ अध्या० ३९।५५+५६ ॥ पुनस्तत्रैव॥मदात्मा मन्मना भस्म गृहीत्वा त्वग्निहोत्रकम् ॥ तेनोद्धूलितसर्वाङ्गो ह्यग्निरित्यादिमन्त्रतः ॥ चिन्तयेत्स्वात्मनीशानं [शिवम्] परं ज्योतिःस्वरूपकम् ॥ एष पाशुपतो योगः पशु-[जीव] पाशविमुक्तये ॥ सर्ववेदान्तमार्गोऽयमत्याश्रममिति श्रुतिः ॥ एतत्परतरं गुह्यं मत्सायुज्यप्रदायकम् ॥ द्विजातीनान्तु कथितं भक्तानां ब्रह्मचारिणाम् ॥ अध्या० ११।६६+६९ ॥ पुनस्तत्रैव व्यासगीतायाम् ॥ सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदाङ्गानि विशेषतः ॥ अभ्यसेत्सततं युक्तं भस्मस्नानपरायणः ॥ अध्या० १४।८६ ॥ पुनर्धर्मशास्त्रान्तर्गत-औशनःसंहितायां वा, एतद्वाक्यम् ॥ अध्या० ३।५८ ॥ पुनर्भस्मजाबालोपनिषदि ॥ एतन्मध्यान्हसायान्हेषु त्रिकालेषु विधिवद्भस्मधारणमप्रमादेन कार्य्यम् । प्रमादात्पतितो भवति, ब्राह्मणानामयमेव धर्मोऽयमेव धर्मः, एवं भस्म-(१) धारणमकृत्वा नाश्नीयादापोऽन्नमन्यद्वा,

---

(१) भस्मधारणमिति ।। तत्र भस्मधारणस्य विधिर्निर्दिश्यते ।। ॐ अग्निरिति मंत्रस्य पिप्पलादिऋषिः रुद्रो देवता गायत्रीछन्दो भस्मग्रहणे चाभिमन्त्रणे विनियोगः।। ॐ अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म जलमिति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति पूतं पावनं नमामि।।अनेन मन्त्रेण भस्म हस्तेन गृहीत्वा पुनरभिमन्त्रयेत् ॐ त्र्यम्बकमिति मंत्रस्य वसिष्ठऋषिः रुद्रो देवता आद्य ब्राह्मो त्रिष्टुप् छन्दांसि भस्माभिमन्त्रणे धारणे च विनियोगः ।। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनमुर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ।। १ ।। ॐ प्रसद्य इति मंत्रस्य विरूपऋषिरग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः भस्माभिमन्त्रणे विनियोगः ।। ॐ प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने । संसृज्य मातृभिष्टं ज्योतिष्मान्पुनरासदः ।। अथ भस्मधारणम् ।। ॐ त्र्यायुषमिति मन्त्रस्य नारायणऋषिः जगतीछन्दः आशीर्देवता भस्मधारणे विनियोगः ।। ॐ

प्रमादात्त्यक्त्वा भस्मधारणं न गायत्रीं जपेत्, न जुहुयादग्नौ तर्प्पयेद्देवानृषीन् पित्रादीन्; अयमेव धर्म्मः सनातनः [सनातनः शिवस्तेन निर्मितो यःस सनातनः] सर्वपापनाशको मोक्षहेतुः, नित्योऽयं धर्म्मो ब्राह्मणानां ब्रह्मचारिगृहिवानप्रस्थयतीनाम् ॥ तेनास्माकम्भस्मधारणं साम्प्रदायिकव्रतमिति सिद्धम् ॥ पुनः कथम्भूतान् द्विजान्? (रुद्राक्षमालाधरान्) रुद्राक्षस्त्रिपुरासुरस्य वधार्थाय रुद्रेण यत्तपस्ततम् तस्मिन् काले तस्याक्षिभिर्निर्गता ये जलबिन्दवस्तैर्यो वृक्षो जातस्तस्य फलानां बीजानां या माला

त्र्यायुषं यमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नो अस्तुत्र्यायुषम् ॥ इति ब्रह्मचारिणाम् ॥ पुनर्देवीभागवते एकादशस्कन्धे ॥ त्रियम्बकेन मन्त्रेण सतारेण शिवेन च ॥ त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं गृहस्थाश्रममाश्रितः ॥ ओंकारेण त्रियुक्तेन सहंसेन त्रिपुंड्रकम् ॥ धारयेद्भिक्षुको नित्यमिति जाबालिकी श्रुतिः ॥ अध्या० ६।२२+२४ ॥ अथ त्रिपुण्ड्रस्य लक्षणमाह ॥ भ्रुवोर्मध्ये समारभ्य यावदन्तो भवेद्भ्रुवोः ॥ मध्यमाऽनामिकांगुल्योर्मध्ये तु प्रतिलोमतः ॥ अंगुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्रः सोऽभिधीयते ॥ इति स्कन्दपुराणे काशीखण्डे ॥ अथ वर्णानुसारत्रिपुण्ड्रधारणस्याधिकारमाह ॥ षडंगुलप्रमाणेन ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम् ॥ नृपाणां चतुरंगुल्यं वैश्यानां द्व्यंगुलं मतम् ॥ शूद्राणामथ सर्वेषामेकांगुल्यं त्रिपुण्ड्रकम् ॥ इति स्मृतिलावण्ये ॥ अथ भस्मधारणयोग्यं स्थानमाह ॥ ललाटे हृदये नाभौ गले च मणिबन्धयोः ॥ बाहुमध्ये बाहुमूले पृष्ठे चैव च शीर्षके ॥ इति बृहज्जाबालोपनिषदि ॥ ब्रा० ४।२८ ॥ पुनस्तत्रैव धारणीयम्भस्माह ॥ त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥ ब्रा० ५।२ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ चतुर्विधं भस्मकल्पम्। प्रथममनुकल्पम्। द्वितीयमुपकल्पम्। तृतीयमुपोपकल्पम्। अकल्पं चतुर्थम् ॥ अग्निहोत्रसमुद्भूतं विरजानलजमनुकल्पम्। वने शुष्कं शकृत्संगृह्य कल्पोक्तविधिना कल्पितमुपकल्पं स्यात्। अरण्ये शुष्कगोमयं चूर्णीकृत्यानुसंगृह्य गोमूत्रैः पिण्डीकृत्य यथाकल्पंसंस्कृतमुपोपकल्पम्। शिवालयस्थानकल्पं शतकल्पञ्च। इत्थं चतुर्विधं भस्म पापं निकृन्तयेन्मोक्षं ददातीति भगवान् कालाग्निरुद्रः ॥ ब्रा० ३।३४ ॥

सा रुद्राक्षमाला तस्या धारकान् धारणशीलान् ॥ अथ रुद्राक्ष-
धारणमेव साम्प्रदायिकव्रतमिति तस्य फलमाह॥स एष भस्मज्योती
रुद्राक्ष इति। तद्रुद्राक्षकरेण स्पृष्ट्वा धारणमात्रेण द्विसहस्रगोप्रदा-
नफलं भवति। तद्रुद्राक्षकर्णयोर्धार्य्यमाणे एकादशसहस्रगोप्रदान-
फलं भवति। एकादशरुद्रत्वं च गच्छति। तद्रुद्राक्षशिरसि धार्यमाणे
कोटिगोप्रदानफलं भवति। एतेषां स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तुं न
शक्यमिति होवाच। मूर्ध्नि चत्वारिंशच्छिखायामेकं त्रयं वा श्रोत्रयो
र्द्वादश कण्ठे द्वात्रिंशद्बाह्वोःषोडश षोडश द्वादश द्वादश मणिबन्धयोः
षट्षट्कर्णयोस्ततः सन्ध्यां सकुशोऽहरहरुपासीताग्निज्योति-
रित्यादिभिरग्नौ जुहुयात्। इति बृहज्जाबालोपनिषदि ॥ ब्राह्मण०
॥५॥ रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् [३२] मस्तके विंश-
तिद्वे [२२] षट्षट् [६] कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वा-
दशैव ॥ बाह्वोरिन्दोः कलाभि-[१६] र्नयनयुगकृते [२] त्वेकमेकं
शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकंठः ॥
इति देवीभागवते दशमस्कन्धे नारदं प्रति नारायणवाक्यम् ॥
अध्या० ३।१८॥ पुनस्तत्रैव स्कन्दं प्रति शिववाक्यम् ॥ रुद्राक्ष-
धारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥ महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्त-
त्त्वदर्शिभिः ॥ अध्या० ६।२४ ॥ पुनस्तत्रैव नारदं प्रति नारायण-
वाक्यम् ॥ निर्व्याजभक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा ॥
रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम् ॥ अध्या० ३।२० ॥
पुनस्तत्रैव एकादशस्कन्धे ॥ स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरा-
र्चने ॥ प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः॥ अरुद्राक्षधरो
भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम्॥ कुर्वन्विप्रस्तु मोहेन नरके पतति
ध्रुवम् ॥ अध्या० ५।१३+१४॥ नारदं प्रति नारायणवाक्यम् ॥
पुनः पद्मपुराणे प्रथमखंडे ईश्वरवाक्यम् ॥ लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं
कोटिर्वै स्पर्शनेन च ॥ दशकोटिफलं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥ जप्त्वास्य लभते पुण्यं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ अध्या० ५६ । १३८ + १४० ॥ पुनः शिवपुराणे ज्ञानसंहितायाम् ॥ शिवनाम विभूतिश्च रुद्राक्षा तृतया शुभा ॥ एतत्त्रयं शरीरे च यस्य तिष्ठति नित्यशः ॥ तस्यैव दर्शनं लोके दुर्लभं पापनाशनम् ॥ अध्या० ३६।१० ॥ पुनः स्कन्दपुराणे सूतसंहितायां यज्ञवैभवखण्डे ॥ त्रिपुंड्रोद्धूलनाचारी जावालोक्तेन वर्त्मना ॥ कण्ठे शिरसि बाहुस्ते रुद्राक्षाणाञ्च धारणम् ॥ देवदेवस्य विप्रेन्द्र महाप्रीतिकरं सदा ॥ अध्या० ३१।११ ॥ पुनः कङ्कालमालिनीतन्त्रे ॥ ततस्तु भस्म तिलकं रुद्राक्षं धारयेत्ततः ॥ रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं भस्मनश्च शृणु प्रिये ॥ माहेश्वरव्रतमिदं कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ पट० । ५ ॥ पुनः शिवपुराणे विद्येश्वरसंहितायाम् पार्वतीं प्रति शिववाक्यम् ॥ वर्णी वनी गृहयती नियमेन दध्यादेतद्रहस्यपरमो न हि जातु तिष्ठेत् ॥ रुद्राक्षधारण-(१) मिदं सुकृतैश्च लभ्यन्त्यक्त्वेदमेतदखि-

(१) रुद्राक्षधारणमिति ॥ रुद्राक्षा एकमुखाच्चतुर्दशमुखपर्यन्ता भवन्ति ते सर्वे मन्त्रेण धारणीयाः ॥ भक्तिश्रद्धायुतैश्चैव सर्वकामार्थसिद्धये ॥ रुद्राक्षान्धारयेन्मन्त्रैः सदालस्यविवर्जितः ॥ विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः ॥ स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इति शिवपुराणे विद्येश्वरसंहितायाम् पार्वतीम्प्रति शिववाक्यम् ॥ अध्या० २५।८२ + ८३ ॥ अथ मन्त्रान्याह ॥ मुख०सं० १,४,५,१०,१३ ॐ ह्रीं नमः । मुखसंख्या० २, १४ ॐ नमः । मु० सं० ३ क्लीं नमः । मु० सं० ६,६,११, ॐ ह्रीं हुं नमः । मु० सं० ७,८ ॐ हुं नमः ॥ मु० सं० १२ ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः ॥ एवं ज्ञात्वा तु माहात्म्यं रुद्राक्षस्य महेश्वरि ॥ सम्यग्धार्य्याः समन्त्राश्च भक्त्या धर्म्मविवृद्धये ॥ अध्या० २५।८७ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ रुद्राक्षधारकानामभक्ष्याण्याह ॥ मद्यं मांसं तु लशुनं पलाण्डं शिग्रुमेव च ॥ श्लेष्मान्तकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ॥ अध्या० २५।४३ यद्वा त्र्यम्बकमंत्रेण धारणीयम् ॥ यथा ॥ त्र्यम्बकमिति मंत्रस्य वसिष्ठऋषिः रुद्रो देवता अनुष्टुप् छन्दः रुद्राक्षधारणे विनियोगः ॥ त्र्यम्बकं यजामहे० ॥

लाम्नरकान्प्रयान्ति ॥ अध्या० ६५।४५ ॥ तेन रुद्राक्षधारणमिति साम्प्रदायिकव्रतमिति सिद्धम् ॥ (पायात्) कलुषितकर्म्मणः पापजनककर्मणो वा पायात्। शुभकार्य्येषु बुद्धिं प्रेरयेत्, इति भावो यस्य भावस्य प्राप्तये वयं गायत्रीमन्त्रेण सदैव याञ्चया-महे ॥ ६ ॥

भाष्य का हिन्दी में संक्षेपानुवाद—

फिर कैसी गायत्री को ? [अग्रे] जो गायत्री पहिले अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में सृष्टि प्रकरण दिखलाने अर्थात् बताने के लिये तथा सृष्टि रचना की शक्तियों के प्राप्ति के निमित्त [विद्वद्वरब्रह्मरमेशरुद्रगुरुभिः?] देवताओं में सब से श्रेष्ठ विद्वान ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन हम लोगों के परम्परा गुरुओं अर्थात् उपदेश करने वालों करिकै ॥ कैसे उपदेश करने वालों करिके ? [भूपाक्षिधीहेतुभिः] भू-सत्तावाची है इससे सृष्टि पा. रक्षणवाची है इससे पालन, क्षि. संहार वाची है इससे संहार, और धी. बुद्धिवाची है इससे ज्ञान, सो जो इन सृष्टि, पालन, संहार और ज्ञान के कारण हैं तिन करिकै [वैदिकः] ज्ञान को देने वाला जो [सम्प्रदायः] गुरू परम्परा से प्राप्त जो सदुपदेश, दीक्षा तथा शिक्षा तिस शिक्षा अर्थात् उपदेश के [कथने] उपदेश करते समय अर्थात् देने के समय में जिसका स्वरूप [शश्वत्] बारम्बार [सदा] सर्वदा [ध्येया] स्मरण करना चाहिये अर्थात् उपासना करना चाहिये ॥ अथवा॥ [विद्वद्वराग्रे] विद्वानों में जो सब से श्रेष्ट हो सो विद्वद्वर कहलाता है, इससे सब से पहिले विद्वान ब्रह्मा के मानसिक पुत्र भृगु, अङ्गिरा, मरीच, वसिष्टादि हुए उनके आगे, अथवा विद्वानों को देवता मानते हैं इससे देवताओं में श्रेष्ट कौन है ? इन्द्र, सो वह भी विद्वद्वर माने जाने से देवराज कहलाये सो उस इन्द्र से लेकर और देवताओं के आगे [ब्रह्मरमेश रुद्रगुरुभिः] ब्रह्मा चतुरानन,

विष्णु और महेश इन उपदेश करने वाले गुरुओं करिकै [शाश्वत] सनातन [वैदिकः] वेदस्वरूपा गायत्री जो पर शिव का साकार स्वरूप है तिस गायत्री ने जो सृष्टि के आदि में जो उन ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उपदेश किया है सो वह उपदेश वैदिक कहलाता है [सम्प्रदायः] सृष्टि के आदि से जो गुरु परम्परा द्वारा प्राप्त हुआ वही सदुपदेश अर्थात् सच्ची शिक्षा है सोई सम्प्रदाय कहलाती है सो उस सम्प्रदाय के [कथने] अर्थात् उसी गायत्री के उपदेश को इन्द्रादिकों प्रति कहने अर्थात् शिक्षा देने. के समय में जिसका स्वरूप [सदा] सर्वदा [ध्येया] स्मरण करना चाहिये या करना योग्य है [सा गायत्री] सो वही हम लोगों को परम्परा गुरु स्वरूपा प्राणों की रक्षा करने वाली हमारी माता गायत्री [स्वसुतान्] हम लोगों अपने पुत्रों को ॥ कैसे पुत्रों को ? [वै] निश्चय करिकै [द्विजान्] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों तथा आर्य्यों को ॥ कैसे द्विजों को ? [शक्तान् शक्ति स्वरूप से अपने गुरू गायत्री की उपासना करने वालौं को। अथवा, शाक्त संज्ञा शिव की है और वही हम लोगों के परमेष्टि गुरू हैं सो उनसे निर्मित जो आर्य्य सम्प्रदाय है तिस सम्प्रदाय को मान कर सम्प्रदायिक होने से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य भी शाक्त हुए सो उन शाक्तों को। अथवा, जिससे दूसरौं को जीति सकें वह शक्ति अर्थात् पराक्रम है सो वह पराक्रम रूपी शक्ति जिसके तीन भेद हैं अर्थात् प्रभाव, उत्साह, और मन्त्रज, अर्थात् जो गायत्री इत्यादि गुरू करिकै उपदेश किए हुए मन्त्रों के जपने से शक्ति स्वशरीर में उत्पन्न हो, उस शक्ति से जो युक्त हों तिनको ॥ कैसे शाक्तौं को ? [प्रियान्] जो गायत्री ही के चरणों की प्रीति का आश्रय करते हों तिनको ॥ कैसे प्रीति का आश्रय करने वालों को ? [भाले भस्म त्रिपुण्ड्र कान्तिलसितान्] मस्तक में भस्म त्रिपुण्ड्र [भस्म से जो तीन रेखायें टेढ़ी अथवा सीधी फैली हुई दोनों भौहौं के बीच में की जाती हैं वह त्रिपुण्ड्र कहलाता है] की कान्ति अर्थात् शोभा से युक्त हों तिनको ॥ फिर कैसे द्विजों को ? [रुद्राक्षमालधरान्] रुद्राक्ष [जिस

समय रुद्र ने त्रिपुरासुर दैत्य को मारने के लिये मंगल चण्डी भगवती की आराधनारूपी तप किया था उस समय उनके ध्यानावस्थित अवस्था में उनके नेत्रों से जो जल बिन्दु पृथ्वी पर गिरे उन जल बिन्दुओं से रुद्राक्ष के वृक्ष उत्पन्न हुए,उन्हीं रुद्राक्ष के फलों के बीजौं से बनी हुई माला रुद्राक्ष माला कहलाती है] की माला धारण करने वालों को [पायात्] कलुषित, अर्थात् कुत्सित कर्म्मों से रक्षा करै॥ तात्पर्य्य यह है कि उनकी बुद्धियों को अच्छे सुमार्ग तथा पुण्य कामों में लगावै और इसी भाव तथा तात्पर्य्य से हमद्विज लोग गायत्री मंत्र द्वारा श्री जगज्जननी गायत्री से सर्वदा यही यांचना करते हैं ॥ ६ ॥

इतीदं ये तु गायत्र्याः स्तोत्रं पञ्चकसंज्ञम् ॥ पठन्ति शुचयो नित्यं द्विजाः सन्ध्यामुपास्य च ॥ प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने भस्मस्नानपरायणाः ॥ ते लभन्ते परं ज्ञानं वेदमातुः प्रसादतः ॥ ७।८॥

अन्वयः ॥

ये द्विजा भस्मस्नानपरायणाश्च शुचयःप्रातर्मध्याह्नसायाह्ने सन्ध्यामुपास्य तु इतीदं गायत्र्याः स्तोत्रपञ्चकसंज्ञकं पठन्ति, ते वेदमातुः प्रसादतः परं ज्ञानं लभन्ते॥७ ८॥

भाष्यम् ॥

अथ श्लोकद्वयेन गायत्र्याः स्तोत्रस्य पाठस्य फलमाह ॥ (ये द्विजाः) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या आर्य्याः ॥ कथम्भूता द्विजाः?

(भस्मस्नानपरायणाः) भस्म शिवाङ्गभूषणं विभूतिर्वा, अग्नि-रित्यादिवैदिकमन्त्रैरभिमंत्र्य तया यद्वैदिकमन्त्रैर्मस्तकादि-षडङ्गेषु सर्वाङ्गेषु वा लेपनं कुर्वन्ति तत्सप्तस्नानानां पञ्चस्नाना-नां वा मध्ये एकस्नानं तस्मिन् स्नाने परायणास्तत्पराः। तत्र प्र-माणम्॥ स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः॥ आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥ आग्नेयं भस्मना स्नानमव-गाहन्तु वारुणम् ॥ आपोहिष्ठेति तद्ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृ-तम् ॥ यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ॥ इति धर्मशास्त्रा-न्तर्गतपराशरसंहितायाम् ॥ अध्या० १२।१०+१३ ॥ पुनः पद्मपुराणे पञ्चमखण्डे विष्णुम्प्रति शिववाक्यम् ॥ सदाशिव उवाच ॥ तव ज्ञानं प्रदास्यामि कुरु स्नानं च वारुणम् ॥ भस्म-स्नानं ततः पश्चात्ततो ज्ञानं वदाम्यहम् ॥ अध्या० १०५।२००+ २०१॥पुनस्तत्रैव॥ भस्मस्नाने च संशुद्धौ वेत्स्यसे परमं शुभम् ॥ दीक्षितस्य हि तच्छ्रुस्तं तद्व्रतां करवाण्यहम् ॥ अध्या० ६ ॥ १०६ ॥ पुनर्लिंगपुराणे ॥ भस्मस्नानेन दिग्धाङ्गो ध्यायते मन-सा भवम्॥यद्यत्कार्य्यसहस्राणि कृत्वा स्नाति च भस्मना॥तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम् ॥ तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा ॥ भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छ-ति ॥ अध्या० ३४।१६+१७ ॥ पुनर्देवीभागवते एकादशस्क-न्धे ॥ भस्मस्नानेन पुरुषः कुलस्योद्धारको भवेत् । तस्मात्स्नानं जलस्नानादसंख्येयं गुणान्वितम् ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वती-र्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते सर्वं भस्मस्नानान्न संशयः ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वाऽप्युपपातकैः॥ भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ भस्मस्नानपरं स्नानं पवित्रं नैव विद्यते ॥ एवमुक्तो शिवेनादौ तदा स्नातः स्वयं शिवः ॥अध्या० १४।५८ ॥ पुनर्बृहज्जाबालोपनिषदि ॥ सन्ध्याद्वये निशीथे च तथा पूर्वा-

वसानयोः ॥ सुप्त्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा कृत्वा चावश्यकादिकम् ॥ स्त्रियं नपुंसकं गृध्रं विडालं वकमूषकौ ॥ स्पृष्ट्वा तथा विधानन्यान्भस्मस्नानं समाचरेत् ॥ ब्रा० ३।५ + ६ ॥ तेन भस्मस्नानं द्विजातीनामवश्यमेव कर्त्तव्यमिति सिद्धम् ॥ पुनः किं कृत्वा ? (सन्ध्यामुपास्य) सन्ध्याकाले गायत्री-सावित्री-सरस्वती-नाम्नोर्देवता उपास्य तासामुपासनां कृत्वा ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ अहरहः सन्ध्यामुपासीतेति श्रुतिः ॥ पुनर्नारदपरिव्राजकोपनिषदि ॥ ततः सन्ध्यां सकुशोऽहरहरुपासीत ॥ अध्या० २।४ ॥ पुनराश्वलायनगृह्यसूत्रे ॥ अथ सन्ध्यामुपासीतेत्याचार्यो यावदहोरात्रयस्य सन्धी यश्च पूर्वाह्णपराह्णयोस्तत्कालभवा देवता सन्ध्या तामुपासीत॥ पुनर्मनुस्मृतौ ॥ नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्म्मणः ॥ अध्या० २।१०३ ॥ तेन द्विजातीनामार्य्याणां गायत्र्युपासनमेव सन्ध्याकाले इति सिद्धम् ॥ कस्मिन्काले उपासना कर्त्तव्या (प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने) प्रातर्मध्याह्नसायङ्काले ॥ (तु) पुनः (इति) स्तोत्रसमाप्तौ ॥ (इदम्) एतत् (गायत्र्याः स्तोत्रम्) वेदमातुः स्तवनम् (पठन्ति) पाठं कुर्वन्ति ॥ कथम्भूतं स्तोत्रम् ? (पञ्चकसंज्ञकम्) श्लोकपञ्चकसंज्ञकम् (ते) ते द्विजा आर्य्या वा (१) वेदमातुः (गायत्र्याः) कस्माद्गायत्री

(१) आर्य्यवेति । अथार्य्यजातिं निरूपयामः ॥ सृष्टेरारम्भकाले ब्राह्मण क्षत्रियविशाम् त्रीणि नामानि बभूवुः । यथा आत्मा वै जायते पुत्र इति न्यायेन मातृपितृसंयोगाज्जाते सति तेषां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्य इति संज्ञा बभूव । पुनरुपनयनसंस्कारसमये गायत्रीमंत्रस्य दीक्षाकाले साविभ्याचार्य्यसंयोगाद् यद् द्वितीयं जन्मबभूव, तेन द्विजत्वसंज्ञाबभूव तत्पश्चात् सृष्टेरारम्भकालादस्माकं गायत्रीमंत्रोपदेशस्याचार्य्यस्य या जातिः सवैकाऽस्माकं साम्प्रदायिकजातिर्बभूव, तेनास्माकं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां त्रीणि नामानि बभूवुः ॥

वेदमातेत्याह ॥ ऋत्वीश्रृंगाटकाकारा कुण्डली वा समुद्भवे ॥
स्वरव्यञ्जन-उत्पत्तौ वेदमाता ततः स्मृता ॥ इति मार्कण्डे-

तत्र प्रमाणम् ॥ धामानि त्रीणि भवन्ति स्थानानि जन्मानीति नैरुक्ताः।।यास्कनिरु०। दै० ३।२७।। तेन त्रीणि नामानीति सिद्धम्।। तत्र सृष्ट्यादावस्माकं क आचार्यो गायत्रीमन्त्रोपदेष्टा बभूवेति प्रश्ने सतीत्याह रुद्राख्य एव यथा पूर्वमेव निदर्शितम्। यो गुरुः स वै आचार्य्यः।। अथाचार्य्यपदे शिवस्य गुरुत्वं स्पष्टीक्रियते ।। यो यस्य मंत्रस्य ऋषिः सैव तस्य मंत्रस्य गुरुः ।। तत्र प्रमाणम्॥ येषु येषु च मन्त्रेषु ये ये ऋषिगणाः स्मृताः।। एते ते गुरुनामानि गुरुत्रितयमर्चयेत् ॥ इति नीलतंत्रे पट० ५ ॥ अथ गायत्रीमंत्रस्य दीक्षाथ ऋषिमाह ॥ ब्रह्मेदं प्रतिष्ठामायतनैच्छत तत्तत्तपस्य यदि तद्व्रतं ध्रियते तत्सत्ये प्रत्यतिष्ठत् । स सविता [सर्वस्य प्रसविता शिवः] सावित्र्या [स्वसाकारगायत्रीस्वरूपेण] ब्राह्मणं [आदिब्राह्मणं रुद्राख्यशिवमिति पूर्वमेवनिदर्शितः] स्रष्टा तत् सावित्रीं पर्यदधात । तत्सवितुर्वरेण्यमिति सावित्र्याः प्रथमः पादःसमदधादृचा । भर्गो देवस्य धीमहि सावित्र्या द्वितीयः पादोऽन्तरिक्षेण यजुः समदधात् । धियो यो नः प्रचोदयादिति सावित्र्यास्तृतीयः पादो दिवा साम समदधात॥ गोपथब्रा०पू०१।३४॥पुनः शतपथब्राह्मणे।। भूरिति प्रजापति-[रुद्रः, प्रजापतिर्वै रुद्रम्।। गो० ब्रा० ३०।१।२ ।।] ब्रह्म जनयत भुव इति क्षत्रं सुवरिति विशमेतावद्वा इदं सर्वं यावद्ब्रह्मक्षत्रविड्भिः सर्वैरेवाधीयते।। पुनः कात्यायनोक्तपारस्करगृह्यसूत्रे उपनयन—गायत्रीदीक्षाप्रकरणे—सद्यस्त्वेव गायत्रीं ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो वै ब्राह्मण इति श्रुतिः। त्रिष्टुभं राजन्यस्य। जगतीं वैश्यस्य। सर्वेषां वा गायत्रीम् ।। कण्डिका०२।७।१०॥ तत्र हरिहरभाष्यम् ।। अथ शासनान्तरम् अस्मै ब्रह्मचारिणे सावित्रीं सवितृदेवत्यां गायत्रीछन्दस्कां विश्वामित्रदृष्टां ऋचां अन्वाह उपदिशति ॥पुनः शतपथब्राह्मणे॥ सविता वै देवानां प्रसविता तथोहास्मा एते सवितृप्रसूता एव सर्वे कामाः समृध्यन्ते । तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गोदेवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्।। २ ३।४।२६।। पुनर्महानिर्वाणतन्त्रे उपनयनप्रकरणे सावित्रीमन्त्रप्रदाने ।। ऋषिः सदाशिवःप्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।। अधिष्ठात्री तु सावित्री मोक्षार्थे विनियोगतः।।उल्ला० ६।२१४।।वैदिकसंस्कारपद्धतौ गायत्र्या विश्वामित्रऋषिः सविता देवता निर्दिशता तस्य समाधानं क्रियते । गायत्रीमंत्रस्य ऋषेः पक्षे विश्वामित्रशब्दोऽपि शिववाचकोऽस्ति न गाधिसूनोर्विश्वामित्रस्य ।।

यपुराणे शक्रं प्रति ब्रह्मवाक्यम् ॥अध्या० ३७॥ यद्वा, ओङ्काराख्य-
गायत्र्याःस्ववेदाख्यशरीराद् गुणकर्मानुसारेण ऋग्यजुःसामवेदा-

तत्र प्रमाणम् ॥ शिवपुराणे ज्ञानसंहितायां विष्णुप्रोक्तं शिवसहस्रनाम्नि ॥ वर्णाश्रम-गुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥ अरागो नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥ अध्या० ७१।२८+७३ ॥ सवितादेवतापक्षे देवता द्विधा स्थानवाचिकाधिष्ठातृदेवता तेनाऽस्मिन्मन्त्रे सविता-स्थानवाचिकदेवता च सावित्री, अधिष्ठात्री देवतेति बोधव्या ॥ अथ गुरोराचार्य्यत्वं निरूप्यते ॥ गुरुः सदाशिवः साक्षात् सत्यमेव न संशयः॥ शिवरूपी गुरु-र्नोचेद् भुक्तिं मुक्तिं ददाति कः॥ देशिकाकृतिमास्थाय पशु [जीव] पाशानशेषतः॥ छित्वा परं पदं देवि नयत्येवमतो गुरुः॥ सर्वानुग्रहकर्तृत्वादीश्वरः करुणानिधिः॥ आचार्यरूप-मास्थाय [शङ्कराचार्यरूपमास्थाय] दीक्षया मोक्षयेत् पशून् ॥ इति कुलार्णवतन्त्रे॥उल्ला० १३॥ तेन शिव एवाचार्य्यःसृष्ट्यादौ बभूवेति सिद्धम् ।तस्य शिवाख्यस्याचार्य्यस्य या आर्य्य-संज्ञा जातिःसा प्रथमश्लोकस्य भाष्ये स्पष्टीबभूव, तस्मात्कारणादाचार्य्यस्यार्य्यजातिर्भूतत्वाद-स्माकं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां तस्य मतानुयायिकसाम्प्रदायिकानामपि साम्प्रदायिकार्य्यना-तिर्बभूव ॥ तत्र प्रमाणम् ॥ आचार्य्यस्तस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः॥ उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा ॥ इति मनुस्मृतौ अध्या० २।१४८॥ पुनरेवं विष्णुसंहितायाम् ॥ अध्या० ३०।४६ ॥ पुनस्तत्रैव मनुः ॥ तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ॥ तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य्य उच्यते ॥ अध्या० २।१७० ॥ तत्र मनुभाष्ये मेधातिथिराह ॥ आचार्य्यात्तु यत्तस्य जन्म तदविनाशि । गृहीते वेदेऽवगते च तदर्थे कर्म्मा-नुष्ठानात् स्वर्गापवर्गप्राप्तिरित्यस्य सर्वस्याचार्य्यमूलत्वात् श्रेष्ठः । यां जातिमुत्पादयति यं संस्कारमुपनयनाख्यं द्वितीयं जन्मेति जन्मसंस्तुतिं निवर्तयति सावित्र्या तदनुवचनेन सा जातिः सत्या अजराऽमरा । यद्यप्येतेऽभिन्नार्थाः शब्दास्तथापीडोपनयनाख्यस्य जन्मनो मातृजन्मनः शकाशाद् गुणातिशयविवक्षायां प्रयुक्ताः । न हि जरामृत्युप्राणिनामिव जातेः सम्भवतः । अविनाशित्वं त्वेकेनैव शब्देन शक्यते प्रतिपादयितुम् । न च तत्प्रतिपाद्यते वेद-पारग आचार्य्यो [शिवः] यां जातिं विधिवत् सावित्र्या उपनयनांगकालोपनयन-सावित्रीशब्दस्य लक्षणत्वात् । उत्पादयति सा श्रेयसीति पदयोजना । जातिर्जन्म ॥

ऽभिधानास्तिस्रः शक्तीरुत्पाद्य ब्रह्मविष्णुमहेशान् दत्वा तेन सा वेदमाताख्याता बभूव। यद्वा,पूर्वोक्तऋग्यजुःसामवेदाख्या गायत्र्या उत्पादितशक्तिभिर्मन्त्राकारेण य उपदेश उपदिष्टस्तेन सा गायत्री [आत्मा वै जायते पुत्र इति न्यायेन] वेदमाता ख्याता(१) बभूव।

तेन द्विजातानामार्यत्वं सिद्धम् ।। पुनस्तत्रैव ।। सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः [द्विजः] सुयन्त्रितः ।। नामन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ।। अध्या० २।११८ ।। अथ सावित्र्युपदेशकालानीतस्माद् द्विजातीनामार्य्याणां बालकानामार्य्याद्व्रात्यत्वं निर्दिश्यते ।। आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।। आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः। अत ऊर्द्धं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।। सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्यविगर्हिताः।। इति मनुस्मृतौ ।। अध्या० २।३८+३९ ।। एवं याज्ञवल्क्यसंहितायाम् ।। अध्या० १।३७+३८ ।।

(१) सा गायत्री वेदमातेति ।। अथ गायत्रितो मन्त्ररूपात्मिका वेदानामुत्पत्तिमाह।। एवं वाऽरेऽस्य महतो भूतस्य [गायत्र्याः] निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः इतिहासपुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।। इति शतपथब्राह्मणे ।।१४।४।४।१०।। एवं बृहदारण्योपनिषदि ।।४।४।१०।। पुनर्गायत्रीकल्पे विश्वामित्रोप्याह ।। चत्वारो वेदाः साङ्गाः सोपनिषदः सेतिहासाः सपुराणास्ते सर्वे गायत्र्याः प्रवर्त्तन्ते ।। पुनर्वायुपुराणे ।। पुरा ह्येकार्णवे वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ।। स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुखितः ।। तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतः कुमारकः।। [शवस्वरूपो भैरवः] दिव्यगंधसुधापेची दिव्यां श्रुतिमुदीरयन् ।। अशब्दस्पर्शरूपान्तामगन्धां रसवर्जिताम् ।। श्रुतिमुदीरयन् देवो यामविन्द चतुर्मुखः ।। ततस्तु ध्यानसंयुक्तस्तप आस्थाय भैरवम् ।। चिन्तयामास मनसा त्रितयं कोऽन्वयन्त्विति ।। तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतं तदक्षरम् ।। अशब्दस्पर्शरूपञ्च रसगन्धविवर्ज्जितम् ।। अथोत्तमं सलोकेषु स्वमूर्त्तिं चापि पश्यति ।। ध्यायन्वै स तदा देवमथैनं पश्यते पुनः ।। तं श्वेतमथरक्तञ्च पीतं कृष्णं तदा पुनः ।। वर्णस्थं तत्र पश्येत न स्त्री न च नपुंसकम् ।। तत्सर्वं सुचिरं ज्ञात्वा चिन्तयन् हि तदक्षरम् ।। तस्य चिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षरः ।। एकमात्रो महाघोषः श्वेतवर्णः सुनिर्मलः ।। स ओङ्कारो [गायत्र्याःस्व-

तस्याः (प्रसादात्) (परं) श्रेष्ठम् (ज्ञानम्) ब्रह्मप्रापकमात्मज्ञानम् (लभन्ते) प्राप्नुवन्ति ॥ ७।८

भाष्य का हिन्दी में संक्षेपानुवाद—

अब दो श्लोक द्वारा इस गायत्री स्तोत्र के फल को कहते हैं। [ये द्विजाः] जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अथवा आर्य्य लोग ॥ कैसे द्विज ? [भस्मस्नानपरायणाः] भस्म अथवा शिवाङ्ग भूषण या विभूति को अग्निरितिभस्म० इत्यादि मन्त्रों करिकै अभिमन्त्रित कर फिर उसी अभिमन्त्रित भस्म से जो वैदिक मन्त्रों द्वारा मस्तक इत्यादि छा स्थानों या सर्वाङ्ग में लेपन करना है सो भस्म स्नान कहलाता है और वह स्नान छा या पाँच स्नानों में से एक स्नान है, तिस स्नान के करने वाले हों [च] फिर क्या करकै ? [सन्ध्यामुपास्य] सन्ध्या नाम वाली गायत्री देवता जो सन्ध्या काल में गायत्री, सावित्री, और सरस्वती नाम से उपासना की जाती है तिसकी उपासना करिकै। किंस काल में ? [प्रातमंध्यान्हसायान्हे] प्रातः मध्यान्ह और सायंकाल में [तु] फिर [इति] इति स्तोत्र समाप्ति के लिये है [इदम्] इस गायत्री के स्तोत्र को [पठन्ति] पाठ करते हैं। कैसे स्तोत्र को ? [पञ्चकसंज्ञकम्] पञ्चक अर्थात् पांच श्लोक वाले को [ते द्विजाः] वे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आर्य्य लोग [वेदमातुः] गायत्री की [प्रसादतः] प्रसन्नता से [परम्] श्रेष्ट [ज्ञानम्] ब्रह्मप्राप्ति योग ज्ञान को [लभन्ते] पाते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

रूपो] भवेद्वेदः अक्षरं वै महेश्वरः॥ ततश्चिन्तयमानस्य त्वक्षरं वै स्वयंभुवः॥ प्रादुर्भूतं तु रक्तन्तु स देवः प्रथमः स्मृतः॥ ऋग्वेदं प्रथमं तस्य त्वग्निमीले पुरोहितम् ॥ एतां दृष्ट्वा ऋचं ब्रह्मा चिन्तयामास वै पुनः ॥ तदक्षरं महातेजः किमेतदिति लोककृत् ॥ तस्य चिन्तयमानस्य तस्मिन्नाथ महेश्वरः ॥ द्विमात्रमक्षरं जज्ञे ईशित्वेन द्विमात्रकम् ॥ ततः पुनर्द्विमात्रं तु चिन्तयामास चाक्षरम् ॥ प्रादुर्भूतं च रक्तं तच्छेदेनैगृह्य सा यजुः॥ इषेत्वोर्ज्जे त्वा वायवस्था देवो वः सविता पुनः ॥ ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रन्तु यजुःस्मृतम् ॥ ततो वेदं द्विमात्रं तु दृष्ट्वा चैव तदक्षरम्॥ द्विमात्रं चिन्तयन् ब्रह्मा त्वक्षरं पुन-

व्योमनागनवाब्जे च युवासंज्ञकवत्सरे ॥
मार्गमासेऽसिते पक्षे त्रयोदश्याम्बुधे दिने॥९॥
निर्मितं कान्यकुब्जेन श्रीजगन्नाथशर्म्मणा ॥
प्रीतये जदम्बाया लोकानां च हिताय वै॥१०॥

अन्वयः ॥

व्योमनागनवाब्जे च युवासंज्ञकवत्सरे मार्गमासेऽसिते पक्षे त्रयोदश्याम्बुधे दिने कान्यकुब्जेन श्रीजगन्नाथशर्म्मणा जगदम्बायाः प्रीतये लोकानाञ्च हिताय वै निर्मितम् ॥ ९-१० ॥

रीश्वरः ॥ तस्य चिन्तयमानस्य चोङ्कारः सम्बभूवह ॥ ततस्तदक्षरं ब्रह्मा ओङ्कारं समचिन्तयत् ॥ अथापश्यत् ततः पीतामृचञ्चैव समुत्थिताम्॥ अग्ना आयाहि वीतये गृहाणो हव्यदातये॥ ततस्तु स महातेजा दृष्ट्वा वेदानुपस्थितान् ॥ चिन्तयित्वा च भगवान् त्रिसन्ध्यं यक्षिरक्षरम् ॥ त्रिवर्णं यत् त्रिगुणाकारमोकारं ब्रह्म-[गायत्री] संज्ञितम् ॥ ततश्चैव त्रिसंयोगात् त्रिवर्णं तु तदक्षरम् ॥ लक्ष्यालक्ष्यप्रदृश्यच सहितं त्रिदिवं [अग्निवायु-आदित्य] त्रिकम् ॥ त्रिमात्रं त्रिपदं [ज्ञेयं स्थानम्] चैव त्रियोगं चैत्र शाश्वतम्॥तस्मात्तदक्षरं ब्रह्मा चिन्तयामास वै प्रभुः॥तस्मात्तदक्षरं सोऽथ ब्रह्मरूपं स्वयम्भुवः॥ चतुर्दशमुखं देवम् पश्यते दीप्तितेजसः ॥ तमोङ्कारं स कृत्वादौ विज्ञेयः स स्वयंभुवः ॥ अ० २६।७+२७॥ पुनर्मनुस्मृतौ ॥ अकारञ्चाप्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः ॥ वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च ॥ अ० २।७६॥ पुनस्तत्रैव ॥ अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनः ॥ दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम् ॥ अ० १।२३ ॥ सृष्टिप्रकरणे॥ तत्र मनुभाष्ये॥ प्रकृत्या एव [गायत्र्या एव] भूर्भुवः स्वरित्येते (१) शब्दा-अभिधीयन्ते ॥ अव्यया अविनाशिन्य. फलस्य दीर्घकालत्वादेवमुच्यते ॥ अ० २।८१॥

---

(१) भूर्भुवः स्वः स्वरूपिणीति गायत्री सहस्रनाम्नि ॥

भाष्यम् ॥

एतत्स्तोत्रस्य निर्माणसमयं श्लोकद्वयेनाह ॥ (व्योम-नाग-नवाब्जे वत्सरे) अङ्कानां वामतो गतिस्तेन व्योम शून्यं, नागा अष्टौ-नव प्रसिद्धम्, अब्ज एकस्तस्मिन्वत्सरे [१९८०]। कथम्भूते वत्सरे ? युवासंज्ञके) युवानामके (मार्गमासेऽसिते पक्षे त्रयो-

---

पुनः शतपथब्राह्मणे ॥ त्रयीवेदास्तस्यैतद्रूपं क्रियते तेन त्रयेन वेदेन पुनर्यज्ञमारभत ॥ ५।५।५।१० ॥ पुनस्तत्रैव ॥ प्रजापतिश्च इदमग्र आसीत एकएव । सोऽकामयतस्यां प्रजायेति, सोऽश्राम्यत् सतपोतप्यत् तस्माच्छ्रान्तात्तपनात् त्रयो लोका असृजत्, पृथिव्यन्तरिक्षद्योः ॥१॥ स इमांस्त्रीँल्लोकानभितताप ।। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निर्वायोऽयं पवते सूर्य्यः॥२॥ स इमांस्त्रीणिज्योतींष्यभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो-वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः ॥ स इमांस्त्रीन्वेदानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्य-[बीजस्वरूपाणि] जायन्त भूऋग्वेदाद्भुव इति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात् ॥ १२।१।१।२।। अथ सृष्ट्यादौ वेदाख्या गायत्र्या उपदेशो मन्त्राकारेण एक एव यजुर्वेदसंज्ञको वेदो बभूव । द्वापरे शिवस्याज्ञानुसारेण विष्णुकृष्णद्वैपायनो व्यासोभूत्वा तदेकं यजुर्वेदं गायत्र्या उत्पादिता ऋग्यजुसामाख्याः शक्तीनां नामानुसारेण विभाजितान् कृतवानिति निर्दिश्यते।। एक एव द्विजो वेदो वेदार्थश्चैक एव तु तथापि मुनिशार्दूल शाखाभेदेन भेदितः॥ अनन्ता वै द्विजा वेदा वेदाऽर्थोऽपि द्विजोत्तमाः॥ अनन्तो वेदवेद्य शंकरस्य शिवस्य तु॥ मायया न स्वरूपेण द्विजाह्यवेद वैभवम् ॥ इति स्कन्दपुराणे सूतसंहितान्तर्गतशिवमाहात्म्यखंडे ॥ अध्या० १।३९ + ३९ पुनस्तत्रैव ॥ ब्रह्माणं मुनयः पूर्वं सृष्ट्वा तस्मै महेश्वरः ॥दत्तवानखिलान्वेदानात्मन्येव स्थितानिमान् ॥ ब्रह्म सर्वं जगत्कर्ता शिवस्य परमात्मनः ॥ प्रसादादेव देवस्य स्मृतीः स्मारसुव्रताः ॥ विष्णुर्विश्वजगन्नाथो विश्वेशस्य शिवस्य तु॥ आज्ञया परया युक्तो व्यासो यज्ञगुरुर्मम॥ स पुनर्देवदेवस्य प्रसादादम्बिकापतेः ॥ संक्षिप्य सकलान् वेदांश्चतुर्धाकृतवान् द्विजाः ॥ ऋग्वेदः प्रथमं प्रोक्तो यजुर्वेदस्ततः परम् ॥ तृतीयः सामवेदाख्यश्चतुर्थोऽथर्व उच्यते ॥ व्यस्तवेदस्ततो व्यास इति लोके श्रुतो मुनिः ॥ अध्या० १।४० + ४६ ॥ पुनः कूर्मपुराणे ॥ एको वेदश्चतुष्पादस्त्रिधा त्विह विभाव्यते॥ वेदव्यासैश्चतुर्द्धा च न्यस्यते द्वापरा-

दश्याम्बुधदिने) अग्रहणमासे कृष्णपक्षे त्रयोदश्याम्बुधदिने (कान्यकुब्जेन) कान्यकुब्जजातीयब्राह्मणेन (श्रीजगन्नाथ-शर्म्मणा) श्रीजगन्नाथमिश्रेण (वै) इति निश्चयेन (जगदम्बायाः) श्रीजगज्जनन्या गायत्र्याः (प्रीतये) प्रीतिप्राप्त्यर्थं (च) पुनः (लोकानां हिताय) मनुष्याणां हिताय कल्याणार्थम् एतत्स्तोत्रम् (निर्मितम्) रचितम् ॥ ९—१० ॥

एकनागनवाब्जे च वत्सरे त्वीश्वराभिधे ॥ माघमासेऽसिते-पक्षे पञ्चम्यां बुधवासरे ॥ १ ॥ भाष्यमेतत्पूर्तिमगादार्य्यसंज्ञसु-विस्तरम् ॥ निर्मितं कान्यकुब्जेन श्रीजगन्नाथशर्म्मणा ॥ २ ॥ गायत्र्याः पादपूजार्थं बालानाञ्च हिताय वै ॥३॥

ॐ दुर्गे पाहि माम् ॥

भाष्य का हिन्दी में संक्षेपानुवाद—

अब इस स्तोत्र के निर्माण समय को दो श्लोकों से कहते हैं। [व्योमनागनवाब्जे वत्सरे] अङ्कों की वाम गति होती है इससे व्योम

दिषु ॥ ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ॥ मंत्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्ण-विपर्य्ययैः॥ संहिता ऋग्यजुःसाम्ना प्रोच्यन्ते परमर्षिभिः॥ सामान्योद्भावना चैव दृष्टिभेदैः क्वचित्क्वचित्॥ ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि ब्रह्मप्रवचनानि च॥ इतिहासपुराणानि धर्म्मशास्त्राणि सुव्रत ॥ अध्या० ३०।४३ × ४७ ॥ पुनस्तत्रैव ॥ पराशरो महायोगी कृष्णद्वैपा-यनो हरिः॥आराध्य देवमीशानं[शिवम्]दृष्ट्वा स्तुत्वा त्रिलोचनम् ॥ तत्प्रसादादसौ व्यासो वेदांश्चैवाकरोत्प्रभुः॥ अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगान् ॥ जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेव च ॥ पैलं तेषां चतुर्थञ्च पञ्चमम्माम् महामुनिः ॥ ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः॥ यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च॥ जैमिनिं सामवेदस्य पाठकं सोऽन्वपद्यत ॥ तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तमृषिसत्तमम् ॥ इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मा-मयोजयत् ॥ एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा प्रकल्पयत् ॥ अध्या० ५२।१० × १६ ॥ पुनर्ब्रह्माण्डपुराणे सूतवाक्यम् ॥ द्वापरे तु पुरावृत्ते मनोः स्वायम्भुवान्तरे ॥

कहिये शून्य० नाग कहिये ८ नव ९ अञ्ज १ सो सब मिलिकै १९८० हुए इस सम्वत में। किसं नाम वाले सम्वत में ? [युवासंज्ञक] युवा नाम वाले में [मार्गमासे] अगहन के महीने में [असिते पक्षे] कृष्ण-पक्ष में [त्रयोदश्याम्] त्रयोदशी तिथि में [बुधेदिने] बुधवार में [कान्यकुब्जेन] कान्यकुब्ज जाति वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने [श्रीजगन्नाथशर्म्मणा] श्रीजगन्नाथमिश्र ने [वै] निश्चय करिकै [जगदम्बायाः] श्रीजगज्जननी गायत्री के [प्रीतये] चरण कमलों में प्रीति प्राप्ति होने के लिये [च] और [लोकानां] मनुष्यों के [हिताय] कल्याण के लिये इस स्तोत्र को [निर्मितम्] बनाया है ॥ ९ ॥ १० ॥

इति कान्हपुर-[कानपुर]मण्डलान्तर्गत-पहलेपुरग्रामनिवासिना-
श्रीमन्महर्षिकात्यायनवंशोद्भवश्री-१०८ मन्नालालमिश्रात्मज-
आर्य्यसम्प्रदायप्रदर्शकगायत्रीभाष्यकारकेण श्री-
जगन्नाथमिश्रेण विरचितमार्य्यभाष्यं
समाप्तम् ॥

ब्रह्मामनुमवाचेदं रक्ष वेदं महामते ।। परिवृत्तंयुगं तात स्वल्पवीर्य्या द्विजातयः ।। संवृता युगदोषेण सर्वं चैव यथाक्रमम् ।। तस्य मानं युगवशादल्पं चैवा हि दृश्यते।। दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्टं कृतोदितम्।। वीततेजो बलंचाल्पं सर्वं चैव प्रणश्यति ।। वेदक्रिया हि कार्य्याःस्युर्माभूद्वेदविनाशनम् ।। वेदनाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाशं गमिष्यति ।। यज्ञे नष्टे वेदनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति ।। आद्यो वेदश्चतुष्पादं शतसाहस्रसम्मितः ।। पुनर्दशगुणः कृष्णे यज्ञो वै सर्वकामधुक्॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रतः ।। वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्द्धा व्यभजत्प्रभुः ।। ब्रह्मणो वचनात्तात लोकानां हितकाम्यया ।।तदहं वर्त्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम् ।। मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानामकल्पनम् ।। प्रत्यक्षेण परोक्षं वै तन्निबोधत सत्तमाः ।। अस्मिन्युगे तदा व्यासः पाराशर्य्यः परंतपः ।। द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः सनातनः ।। ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन् वेदंवक्तुं प्रचक्रमे।।एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।। अध्या० ३०।१ × १७ ॥

शुद्धिपत्रम् ।

भूमिकायाम्

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ
स्त्रूवविणी	स्वरूपिणी	७	२४	नात्मका	नात्मिका	७	२४

भाष्ये ।

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
ब्रम्ह	ब्रह्म	२	६	पतस्तत्प्र	यतस्तत्प्रा	५	१८
दजस्रा	दजस्रं	२	१०	काययतो	काययुतो	६	१२
गायत्रि	गायत्री	२	१२	पुराणान्तं	पुराणान्त	६	२१
यस्या	यस्याः	२	१४	संदितायाम्	संहितायाम्	६	२१
प्रजपतेः	प्रजापते	२	१७	ब्रह्मणः	ब्राह्मणः	६	२२
न्त्रहिं	न्त्राहि	२	१७	रूपाामिति	रूपमिति	६	२३
चिंकीषर्या	चिकीर्षया	२	२०	प्रसता	प्रसूता	७	१२
दुर्गानाश	दुर्गान्नाश	२	२३	ब्रह्मं	ब्रह्म	७	१४
मनः	मनाः	३	८	स्मज्जाया	स्माज्जाया	७	२१
वेदार्थञ्चैव	वेदार्थस्य च	३	९	साकार	साकारं	८	४
शैवान	शैवाना	३	१९	देहिना	देहिनां	८	५
नाराधिंता	नाराधिता	३	२२	वक्रा	वक्त्रा	८	९
इन्द्रो	रिन्द्रो	३	२४	जनत	जनत्	८	१२
दोहिच	दोपि च	४	२	वेद	वेद	८	१८
तत्रेषां	तत्रैषां	४	५	सर्वे	सर्वै	८	१९
स्वत्व	स्तत्त्व	४	१०	पुनरैत्तरीय	पुनरैतरेय	८	२०
उकारन्चिछव	उकाराच्छिव	४	११	शम्भु	शम्भुः	९	१
गुरुसाक्षा	गुरुस्साक्षा	४	२५	हिरणक्षा	हिरण्यक्षा	९	१७

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ
मन्यादयो	मन्व्वादयो	९	१९	गुरुवक्र	गुरुवक्त्र	११	२२
सङ्घः	सङ्घाः	९	२०	न्निवीर्य्यो	न्निर्वीर्य्या	११	२३
मुवाच	मुवाच	९	२२	नित्यं	नित्य	११	२५
रुद्राणा	रुद्राणां	९	२२	वधिम्	वाधि	१२	३
ध्येयं	ध्येयः	९	२३	इन्द्र	रिन्द्र	१२	१६
तत्वमेव	तत्त्वमेव	९	२३	मन्त्रेति	मन्त्र इति	१२	२४
स्संसार	सर्वसंसार	९	२५	माहात्मे	माहात्म्ये	१३	४
पर्व्याणि	पर्वाणि	१०	१	छन्द	छन्दो	१३	१८
स्त्रष्टार	स्रष्टार	१०	४	सावित्रीं	सावित्री	१३	१८
सुष्ठु	सुष्ठु	१०	७	मन्त्र	मन्त्रो	१३	१८
जिह्वोष्ठादि	जिह्वौष्ठादि	१०	११	पद्मान्ते	पदान्ते	१३	२१
दुगा	दुर्गा	१०	१२	स्वामिन्	स्वामिनि	१४	१
जपस्या	जपः स्या	१०	१३	आर्य्य स्याद	आर्यःस्याद	१४	६
वाचिको	वांचिको	१०	१३	वामकर्णः	वामकर्णो	१४	२२
द्वया	द्वय	१०	१८	कर्ण	कर्णौ	१४	२३
मुक्ति	मुक्ती	१०	२३	सरेफयुक्तः	स रेफयुक्तो	१४	२४
मृत्युजये	मृत्युजयो	१०	२३	वरुणः	वरुणो	१४	२४
दातारम्	दातृ	११	२	सर्गोः	सर्गों	१४	२४
स्नातः	स स्नातः	११	६	युक्तम्	युक्तः	१४	२५
न्तरगत	न्तर्गत	११	१४	यजुर्वेद	यजुर्वेदे	१५	१४
गुरोमूर्तिः	गुरोर्मूर्तिः	११	१७	गायत्री	गायत्र्यो	१५	१४
पूजामूल	पूजामूलं	११	१८	रैत्तरीय	रैतरेय	१५	१५
क्रिया	क्रियाः	११	१९	स्तेजोवे	स्तेजो वै	१५	१६
गुरुनित्य	गुरुर्नित्य	११	२१	ब्रम्ह	ब्रह्म	१५	१६
श्च	च	११	२१	ऐत्तरीय	ऐतरेय	१५	१७

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ
सनुब्रूया	यानुब्रूया	१५	१८
वभूवत्याह	वभूवेत्याह	१५	२०
प्रराणे	पुराणे	१५	२४
आवन्तिका	अवन्तिका	१५	२४
भिन्ता	भिन्ना	१६	८
जात्मन	जात्मान	१६	१६
भवाश्चिन्तां	भवाश्चिन्ता	१६	१७
स्थितस्ततः	त्थितस्ततः	१६	१७
पार्श्वे	पार्श्वे	१६	२२
इत्युक्तो	इत्युक्ति	१६	२५
शक्तिर्हि	शक्तिर्हि	१७	८
शक्तिद्विधा	शक्तिर्द्विधा	१७	१०
नित्याद्वौ	नित्यौ द्वौ	१७	१२
राम	राम्	२२	२
तराम्वि	तरां वि-	२२	४
कली	कुली	२२	९
सर्व	सर्वं	२२	११
राजन्य	राजन्या	२२	१४
नार्य्याथात्	नार्य्यात्	२२	१९
श्रेयस्त्वं	श्रेयस्त्वञ्चेत्	२२	१९
तिष्टत्त	तिष्ठत्त	२३	३
सध्या	सन्ध्या	२३	१०
नविष्णोर्दीक्षा	विष्णोर्दीक्षा न	२३	१२
सर्वं	सर्वा	२३	१३
जातो	जात	२३	२१

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ
सिद्धाचरणे	षिद्धाचरणे	२३	२३
जाति	द्विजाति	२३	२५
जयास्तंत्रे	गयांस्त्रे	२४	२
गयास्तत्प्रा	गयांस्तत्प्रा	२४	२
द्वयास्तत्रे	द्वयांस्तत्रे	२४	३
नाम्	नाम	२४	३
भक्ष्थ	भक्ष्य	२४	६
द्विजम्	द्विजम्	२४	७
गायन्ते	गायन्तं	२४	७
सकारा	साकार	२४	१०
वेद	वेदः	२४	१८
भिदामिति	भिधामिति	२४	२४
पूर्णब्रह्म	ब्रह्मपूर्ण	२५	२
साक्षादै	साक्षाद्वै	२५	४
भुवेंशो	भुवेशो	२५	६
स्मर्तारो	संस्मर्तारो	२५	७
कारकः	कारकाः	२५	७
हिमवान	हिमवतो	२५	१२
वान्प्रति	वन्तं प्रति	२५	१३
प्रवर्त्तते	संप्रवर्त्तते	२५	१६
निधान	निधना	२५	१८
या त्रीणि	यानि त्रीणि	२५	२५
ऋग्यंयु	ऋग्यजुः	२६	७
ओङ्कारास्य	ओङ्कारस्य	२६	७
ऋग्यजु	ऋग्यजुः	२६	८

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ
क्रियत	क्रियते	२६	८	स्वर्णा	स्वर्ण	३१	१९
माहात्मे	माहात्म्ये	२६	१०	विभासे	विभासि	३१	१९
ऋक	ऋक्	२६	१०	लासतां	लसितां	३१	१९
वलधा	बलया	२६	१३	भूषिता	भूषितां	३१	२०
रुकस्तुवौ	स्रुक्स्रुवौ	२६	१३	लावराय	लावण्य	३१	२०
मृघ्यै	मृद्धयै	२६	१५	ऽवृताम्	वृताम्	३१	२१
चरमा	चर्मा	२६	१६	वक्षथले	वक्षःस्थले	३२	१०
श्रिये	श्रियै	२६	२१	सुष्टु	सष्ठु	३२	१०
वह्वृचो	वह्वृचो	२७	४	फुल्लाम	फुल्लाम्	३२	११
त्रिषदि	निषदि	२७	४	मौंदिनाम्	मोंदिनीम्	३२	१२
विंशाक्षरो	विंशाक्षरः	२७	५	लङ्कताम्	लङ्कृताम्	३३	१७
व्याख्य	व्याख्या	२७	७	,,	,,	३३	१८
मार्य्य	आर्य्य	२७	८	मसुद्रां,	मुद्रां,	३४	१
नांमेवं	नामेवं	२७	१०	जटितानिल	तैलं	३४	४
प्रलिप्ताङ्गी	प्रलिप्ताङ्गीं	२७	१२	लसिते	लसिते	३४	४
देवीं	देवी	२७	१४	पश्वा	पञ्चा	३४	५
श्चपणे	श्चरणे	२७	१५	यस्या	यस्याः	३४	५
सा सावित्री।	सा गायत्री, सावित्री	२८	२	यन्तीकरे	यन्तीकरे	३४	१७
गायत्रीं	गायत्री	२८	७	श्रवो	स्रुवो	३५	८
नूपराणि	नूपुराणि	२८	१०	कश्मीरजं	काश्मीरजं	३५	११
गायत्रीं	गायत्री	२८	१३	स्थिता	स्थितां	३५	१५
उपसितां	रुपासितां	२८	१४	पूर्वार्थे	पूर्वार्धे	३५	१६
गायत्रीं	गायत्री	२८	१६	घ्यानं	ध्यानं	३६	१
मेघाकरं	मेघाकर	२८	२०	नाम्नी	नाम्नि	३६	२
अघ्य०	अध्या०	२९	६	,,	,,	३६	४

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ
कृद्	कृत्	३६	८
धिष्ठात्रि	धिष्ठातृ	३६	१०
धिष्ठात्रि	धिष्ठातृ	३६	२१
मंत्रेति	मन्त्र इति	३६	२१
सुष्ट	सुष्ठु	३७	२
बुद्द्ध्य	बुद्ध्य	३७	६
कार्य्य	कार्य्या	३७	१६
द्व म्	द्वयम्	३७	२१
शाकिनी	राकिनी	३७	२१
सत्वरूपं	सत्वरूपा	३७	२२
क्षेभकरी	क्षेमकरी	३८	२१
द्वैहिक	द्वैदिक	३९	५
गयित्री	गायत्री	३९	१३
खृष्टि	सृष्टि	३९	१७
रुदु	रुद्र	३९	१८
श्रेष्टो	श्रेष्ठो	३९	१८
शश्वत	शश्वत्	३९	२०
मुपदेष्टॄ	मुपदेष्टृ	४०	१
हेतु	हेतुः	४०	४
नाम्प्रति	न्र् प्रति	४०	१०
यदुपदेशं	य उपदेशः	४०	११
कृतःत	कृतस्त	४०	११
महत्तत्वं	महत्तत्त्व	४०	११
भावितामू	भाविताः	४०	१३
विभूर्तिं	विभूतिं	४०	१६
स्थिताः	संस्थिताः	४०	१८
शुचिस्यते	शुचिस्मिते	४०	२२
वक्षस्थले	वक्षःस्थले	४०	२३
योगोवे	योगो वै	४०	२५
शश्वत	शश्वत्	४१	१
पृयिव्यां	पृथिव्यां	४१	६
विनाशे	विनाशं	४१	७
श्रुणु	शृणु	४१	१४
परमात्मा	परमात्म	४१	१४
नयासह	तया सह	४१	१६
मिच्छतः	मिच्छता	४१	२१
मुचिद	मित्य	४१	२४
तेऽङ्घ्रि	तेऽङ्घ्रि	४२	१
शिवा	शिव	४२	८
जश्र	जश्व	४२	११
सत्व	सत्त्व	४२	११
सुखिनो	सुखितो	४२	१७
कदाचनः	कदा चन	४२	२१
स्त्वद्य	स्वाद्य	४२	२२
स्मरतव्या	स्मर्तव्या	४२	२३
प्रतिं	प्रति	४२	२५
स्थिवां	स्थितवां	४३	५
तम्भिषेण	तर्म्मिषेण	४३	१४
नकिन्ते	न किन्ते	४३	१५
हिरस्त्रातु	हरिस्त्रातु	४३	१९
सम्प्रदय	सम्प्रदाय	४३	२०
पाण्ड	पाखण्ड	४३	२३
संकरणानाम्	संकराणाम्	४३	२३
ब्राह्मयं	ब्राह्मण्य	४३	२४
सिद्ध्यर्थं	सिद्ध्यर्थ	४३	२४

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पंक्तौ
द्वराग्ने	द्वराग्ने	४४	२
विद्वा	विद्वां	४४	२
मनुष्याणा	मनुष्याणां	४४	४
श्रेष्टा	श्रेष्ठो	४४	४
वाशिष्ठा	वाशिष्ठा	४४	५
ब्रह्मणेर्मा	ब्रह्मणो मा	४४	५
णस्माभिः	णास्माभिः	४४	७
देवी सूंक्त्रे	देवीसूक्ते	४४	१०
हिमवानं	हिमवन्तं	४४	१२
भांत्त्या	भंक्त्या	४४	१३
मभा	ममा	४४	१५
स्त्याज्या	स्त्याज्य	४४	१९
मुत्सज्य	मुत्सृज्य	४४	२१
धर्म्मिणान्	धर्म्मिणः	४४	२२
सरिति	स इति	४४	२४
वेदाऽन्यत्र	वेदादन्यत्र	४४	२५
स्मार्ता	संस्मार्ता	४५	४
प्रकीर्तितः	प्रकीर्तितः	४५	५
मेव	एव	४५	९
सर्वं	सर्व	४५	११
परमेष्टी	परमेष्ठी	४५	१५
गुरुवो	गुरवो	४५	१५
गुरुणां	गुरूणां	४५	१७
मध्येऽस्मा	मध्ये अस्मा	४५	१७
यक्षादीन्	यक्षादीनां	४५	१७
जायते	जायत	४५	१९
ता चतु	ताश्चतु	४५	२६
स्मृता	स्मृताः	४६	७
पाणिरितिः	पाणिरिति	४६	८
वेंदीय	वेंदीय	४६	९
भूताना	भूतानां	४६	९
विष्णु	विष्णुः	४६	१३
तेष	तेषां	४६	१४
नारकीस	नारकीय	४६	१३
तमों	तमो	४६	१७
द्वजोत्तमाः	द्विजोत्तमाः	४६	२०
वदान्वि	वदान्ति च	४६	२३
नृणां	नृणां	४६	२५
वाप्नोति	मवाप्नोति	४७	६
त्यंमित्याह	त्यमित्याहु	४७	९
यदज्ञाने	यज्ज्ञाने	४७	१२
देवमे	देव	४७	१६
विहीनाय	विहीनाया	४७	१८
पारगाः	पारगा	४७	१८
परपर्य्ये	पारंपर्य्ये	४७	१९
पाशा	पाश	४७	२०
सन्तित	सन्तति	४७	२१
विंप्रा	विंप्रा	४७	२२
ब्राह्मणे	ब्राह्मणो	४७	२५
तां	तान्	४८	७
क्षत्रिय	क्षत्रि	४८	९
द्वितीय	द्वितीयं	४८	११
तृतीय	तृतीयं	४८	११
वाह्या	बाह्याः	४८	१२
कार्य्ये	कार्य्यो	४८	१४
न्नृणां	न्नृ	४८	१७
शङ्करां	शङ्करा	४८	१८
उपदेश्य	उपदेक्ष्यति	४८	१९
तज्ज्यानं	तज्ज्ञानं	४८	१९
मप्तमम्	सप्तम	४८	२५